गती तल पर अनुपम,
है नित उच्च परम ।
पापो का भार हरे,
-जन मे उत्साह भरे ।

नी बनकर निज कार्य क्षेत्र मे डट जावे,
भुजदण्डो का वे चिर अतीत गौरव पावे ।
अमर कीर्ति उत्साह सलिल की धार बहे,
पुनीत पत्रिका जन-जन मे उत्साह भरे ।

जावे आज अशिक्षा ने,
ज ज्ञान की शिक्षा से ।
मत्र कोने सुविहार करे,
-जन मे उत्साह भरे ।

सभी जैन जो छिन्न-भिन्न हो रहे आज,
दान करे त्यागे सव अपने स्वार्थ काज ।
देश मे भी नवजीवन का सचार करे,
पुनीत पत्रिका जन-जन मे उत्साह भरे ।

स्मारिका---

सम्बोधिका

द्वितीय — पुष्प

सन् १९७१

★

प्रेरणा
[illegible] मुनि श्री कान्तिसागरजी

संरक्षक
श्री [illegible] मेहता
श्री प्रेमचन्द धाधिया
श्री गुमानमल [illegible]
श्री विमलचन्द रतनचन्द [illegible]
श्री पूनमचन्द भांडिया

विज्ञापन
धर्मेन्द्र [illegible]

वितरण
प्रवीण [illegible]

चित्र एवं प्रचार
[illegible]

प्रधान सम्पादक
विजय [illegible]

प्रबन्ध सम्पादक
कनक श्रीमाल

सलाहकार सम्पादक
पं० भगवानदास जैन

सदस्य
विमलचन्द [illegible]
[illegible] बोर
गुलाबचन्द गोलछा
राजकुमार अग्रवाल

प्रकाशक

श्री जैन मित्र मण्डल, जयपुर-३

प्रकाशक
श्री जैन [illegible]
कुन्दीगरों के भैरों जी का रास्ता,
जयपुर-३



प्रकाशन
[illegible]

द्वितीय

[illegible]
१९७१

प्रतियाँ
[illegible]

मुद्रक :
प्रिन्ट इण्डिया
जे-२२८, 'आनन्द कुटीर'
[illegible] नगर मार्ग
जयपुर-४



अनुक्रमणिका

शुभकामना सन्देश

विचार और प्रतिबिम्ब

मुक्तक एवं अमृतवचन :



शुभकामना संदेश





राष्ट्रपति सचिवालय
राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली-४



पत्रावली स ८–जी/७१
२३ सितम्बर १९७१

प्रिय महोदय

राष्ट्रपतिजी के नाम दिनाक २० सितम्बर १९७१ का आपका पत्र प्राप्त हुआ।

शुभकामनाओं सहित

भवदीय
(खेमराज गुप्त)
राष्ट्रपति के अपर निजी सचिव



उपराष्ट्रपति के सचिव
नई देहली

दिनाक २४ सितम्बर, १९७१

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनाक २० सितम्बर, १९७१ का उप-राष्ट्रपतिजी के नाम से प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

उप-राष्ट्रपतिजी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अपनी वार्षिक स्मारिका "सम्बोधिका" का द्वितीय पुष्प स्वर्गीय मुनि श्री कातिसागरजी की पुण्य तिथि पर प्रकाशित करने जा रहे हैं। उप-राष्ट्रपतिजी स्मारिका "सम्बोधिका" की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभ कामनाये भेजते हैं।

आपका
(वि० फड़के)

राजस्थान  सरकार

मुख्य मंत्री राजस्थान
जयपुर



२४ सितम्बर १६७१

यह बड़े हर्ष का विषय है कि श्री जैन मित्र मण्डल कुन्दीगरा के भैरजी का रास्ता जयपुर अपनी वार्षिक स्मारिका 'सम्बोधिनी' का द्वितीय पुष्प स्वर्गीय १००८ मुनि श्री मतिसागरजी महाराज साहब की प्रथम पुण्य तिथि पर प्रकाशित कर रहा है। आशा है कि उक्त स्मारिका में विभिन्न समयानुरूप विषयों का समावेश करते हुए जैन दर्शन, साहित्य आदि से संबंधित जानकारी का दिग्दर्शन हो सकेगा।

मैं स्मारिका की सफलता हेतु अपनी शुभ कामनाएं भेजता हूं।

(बरकतुल्ला खां)
मुख्य मंत्री राजस्थान

मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी
'प्रथम'
दिल्ली ।

दिल्ली
२६ सितम्बर ७१

संसार जिस गति से वैज्ञानिकता की ओर बढता जा रहा है, सत्य का सन्धान उतना ही सुगम हो रहा है । मध्य युग मे जब कि भारत मे कुण्ठा छा चुकी थी, चिन्तन रुढ हो चुका था, अब विज्ञान व शिक्षा के प्रसार से वे सब आवरण दूर हो रहे है। ऐसे समय मे भगवान् महावीर के सन्देश का व्यापक प्रसार अत्यन्त आवश्यक हो गया है । चिन्तन के विस्तार के साथ भगवान् महावीर के सन्देश का तादात्म्य है । उस सन्देश को जितनी सुगमता से बौद्धिक व्यक्ति ग्रहण कर सकते है, उतने अन्य नही । यह कार्य युवको को अपने पर लेना चाहिए मुझे प्रसन्नता है कि 'सम्बोधिका' के माध्यम से जयपुर के नवयुवक अपने इस दायित्व का निर्वहन करने में प्रयत्नशील है । सत् श्रद्धा, गहरी निष्ठा तथा अनवद्य प्रयत्न सदैव ही निखार लाते हैं ।

—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

आचार्य श्री तुलसी
लाडनूं (राजस्थान)

लाडनूं
२५ सितम्बर १९७१

हर युग के कुछ प्रश्न होते हैं। वे वर्तमान पीढ़ी से उनका समाधान चाहते हैं। वह या तो अतीत के गहरे में उलझी होती है या भविष्य के अज्ञात में। इसलिए वह उनका समुचित उत्तर नहीं दे पाती। समस्या उत्तरोत्तर घटती जाती है।

आज की पीढ़ी जागरूक है यह प्रतिभासित हो रहा है। धर्म की अपेक्षा सम्प्रदाय मुख्य हो गए। युवक मानस में धर्म की विमुखता और समाज-विघटन का मुख्य कारण यही प्रतीत हो रहा है।

विचार और आचार-व्यवहार में सामंजस्य तभी स्थापित हो सकता है जब धर्म की अन्तरात्मा का स्पर्श हो। आत्म-जागरण के बिना यह कैसे संभव हो सकता है?

मैं धर्म को परम सत्य मानता हूं। न केवल मानता हूं, अनुभव भी करता हूं। आत्मा की गहराई में गए बिना धर्म हमारे लिए परम सत्य नहीं हो सकता।

इस सम्बोधि का प्रसार आपकी सम्बोधि का कार्य होना चाहिए।

—आचार्य तुलसी

श्री यशपाल जैन
नई दिल्ली

कनॉट सर्कस नई दिल्ली
१०-६-७१

प्रिय भाई,

सप्रेम नमस्कार !

आपका ७ सितम्बर का पत्र मिला। यह जानकर हर्ष हुआ कि आप "सम्बोधिका" का द्वितीय पुष्प प्रकाशित कर रहे हैं। उसकी सफलता के लिये मेरी अनेकानेक शुभ कामनाएं लीजिये। मुझे पूरा विश्वास है कि आप उसमें ऐसी सामग्री देंगे, जो समाज को शुद्ध एवं प्रबुद्ध करने में सहायक हो। आज देश के सामने दो प्रमुख समस्याएं हैं देशवासी नेक बनें और एक बनें। उसके लिए विचारों की क्रांति आवश्यक है। आप ऐसी रचनाएं लीजिये, जिससे हमारी जडता स्वार्थपरता तथा पदलोलुपता दूर हो।

विशेष कृपा।

भवदीय
(यशपाल जैन)

श्री विशाल विजय जी
महाराज साहब
बम्बई

एक अच्छे अवसर पर इतनी सद्भावना से हमें याद किया यह आनन्द की बात है।

स्मारिका का सम्बोधन प्राणवान बने।

यही शुभेच्छा !

—विशाल विजय





★

यह आवश्यक नहीं कि सम्पादक मण्डल लेखक के
विचारों से पूर्णत सहमत हो ।





यह आवश्यक नहीं कि 'सम्पादक मण्डल' लेखक के
विचारों से पूर्णतः सहमत हो ।

सम्पादकीय



★ विजय लोढा

अपनी कमी या त्रुटि को स्वीकार करने मात्र से वस्तुतः हम अनेकों कठिनाईयों की लम्बी परिधि के घेराव से बच सकते हैं किन्तु उस कमी को सुधार कर हम अपने जीवन में निखार भी ला सकते हैं। हमारा धर्म हमारे लिये केवल मात्र श्रद्धा का विषय हो बौद्धिक एवं युवा वर्ग तथा वैज्ञानिक आज इस तथ्य को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं हैं। आज का युग कहने का नहीं प्रयत्न में कुछ कर दिखाने का युग है।

एक समय था जब किसी सन्देह की अभिव्यक्ति के सत्य या असत्य की पुष्टि के बिना ही सभी बातें स्वीकार करली जाती थी। पुत्र अपने पिता के शिष्य अपने गुरु के श्रावक साधु के और सामान्य जन अपने नेता के किसी कथन पर आपत्ति नहीं उठा सकते थे क्योंकि उन बुजुर्गों का अनुभव ही अग्रगण्य माना जाता था। आज भी कुछ लोग इस प्रकार का आग्रह करते हैं कि अमुक शास्त्र अथवा धर्म ग्रन्थ में यह लिखा है अतएव यही सही है। लेकिन विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि यह आवश्यक नहीं कि सभी प्राचीन ग्रन्थों में प्रतिपादित वर्णन सत्य ही हो। विश्व के महानतम देश अमेरिका द्वारा अपनी अपालोयान योजना के अन्तर्गत प्राप्त सफलताओं ने तो मानो समस्त विश्व के विभिन्न धर्मावलम्बियों में खलबली ही मचा दी है। विभिन्न प्राचीन धर्माचार्यों द्वारा चन्द्रलोक के बारे में दिये गये दृष्टान्त व्याख्याएँ तथा धर्मोपदेश आज मानव की इस अभूतपूर्व विजय के उपरान्त गलत साबित होने लगे हैं।

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थ और कोषों में शास्त्र और ग्रन्थ प्रायः एकार्थक हैं फिर भी प्रमुख आधुनिक विचारकों एवं बुद्धिजीवियों की मान्यता है कि—शास्त्र आत्म शुद्धि के प्रतिपादक आध्यात्मिक उपदेश तथा ग्रन्थ इधर–उधर के विचारों का युगानुकूल संकेत मात्र हैं अतएव न तो शास्त्र झूठे हो सकते हैं और न ही ग्रन्थ भगवत्वाणी ही। उनके अनुसार अतीत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण परस्पर पूरक हैं विरोधी नहीं।

वैज्ञानिक शोध कार्यों पर आधारित सफलतायें और नवीनतम रहस्योद्घाटन विज्ञान के क्षितिज पर बढ़ते चरण हैं प्राचीन दृष्टिकोण का अनादर नहीं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में केवल वही धर्म और सिद्धान्त जीवित रह सकते हैं जो मानव जीवन के लिये व्यावहारिक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकें। अतः आज आवश्यकता है रूढ़वादिता को छोड़ कर युगानुकूल सुधार की।

उपर्युक्त विवेचन से धार्मिक ग्रन्थों की अवहेलना करने का मेरा तात्पर्य कदापि नहीं है, यद्यपि हम चाहते हैं कि हमारे विद्वान धर्माचार्य उनकी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुनः समीक्षा करें ताकि युवा पीढ़ी धर्म व धार्मिक ग्रन्थों के प्रति आस्था श्रद्धा और विश्वास के साथ आने वाली चुनौतियों का सामना कर सके। इस प्रश्न पर अभी तक उपाध्याय कवि श्री अमरमुनिजी महाराज सा० व कुछ अन्य विद्वानों ने समाज के समक्ष अपने विचारों का प्रस्तुतीकरण किया है। किन्तु इस ओर और अधिक ध्यान दिया जाना व समाज द्वारा इस विषय में रुचि लेना अत्यन्त आवश्यक है।

स्मारिका "सम्बोधिका" का द्वितीय पुष्प आपके कर कमलों में है, इसमें विभिन्न पुष्ट मौलिक विषयों का समावेश करने का हमारा प्रयास रहा है, मुझे विश्वास है कि प्रकाशित सामग्री पाठकों के लिए उपयोगी एवं मण्डल के विभिन्न क्रियाकलापों की परिचायक सिद्ध होगी। जैसा कि आप सभी को विदित है कि वर्तमान वर्ष मण्डल की स्थापना का मात्र तृतीय वर्ष एवं प्रस्तुत स्मारिका हमारा द्वितीय प्रयास है अतएव अनुभव के अभाव अथवा अन्य कई कारणों से त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। किन्तु मुझे आशा है कि माननीय पाठक गण त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे, स्मारिका को अपना पूर्ण सहयोग, अपने समीक्षात्मक एवं मार्गदर्शक बहुमूल्य सुझाव प्रेषित कर हम सबको उत्साहित करेंगे।

अन्त में मैं उन सभी सहयोगी बन्धुओं, माननीय सदस्यों, विज्ञापनदाताओं, शिक्षाशास्त्रियों तथा विभिन्न संस्थाओं का धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने स्मारिका—"सम्बोधिका" के प्रकाशन में सराहनीय प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्रदान कर हमें प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। सम्पादक मण्डल के अपने सभी सहयोगी साथियों का मैं [illegible] आभारी हूँ, मैं [illegible] एवं अन्य उन सभी साथियों का भी हृदय से आभारी हूँ जिनके निःस्वार्थ सहयोग के फलस्वरूप ही यह सुन्दर प्रकाशन आपके हाथों में आ सका है। ★★★

दो मुक्तक—

★ बिखरे हुए मोतियों को यदि रेशम की डोरी में गूंथ दिया जाय तो उनका मूल्य एवम् सुन्दरता अभिवर्द्धित हो जाती है। ठीक उसी प्रकार यदि मनुष्य में गुणों व अच्छाइयों का समावेश हो जावे तो उसका मानव जन्म सफल हो जाता है।

★ जवाहरात की एक पुड़िया में यदि अधिक संख्या में रत्न हों तो उनकी कीमत, उस पुड़िया की तुलना में अधिक होती है जिसमें मात्र एक रत्न ही है। इसी प्रकार प्रकाण्ड विद्वान वही होता है, जिसमें अनेक गुण एक साथ विद्यमान हों।

—विमल भंसाली

स्मारिका - "सम्बोधिका" द्वितीय पुष्प सन् १९७१

— सम्पादक-मण्डल —



बायें से दायें—सर्व श्री सुभाष गोलछा-सदस्य श्री अजीत लोढा-वितरण सम्पादक श्री पदम बंहेर-सदस्य
श्री विजय लोढा-प्रधान सम्पादक श्री कनक नीमान-प्रबन्ध सम्पादक
श्री विमल मघाली-सदस्य तथा श्री अजीत जूनीवाल-विज्ञापन सम्पादक



अपनी बात

पिछले कई वर्षों से जयपुर के जैन समाज में एक ऐसी समाज सेवी संस्था का जो कि बिना गच्छ, पंथ इत्यादि भेदभाव के समाज सेवा का कर्तव्य पूर्ण कर सके प्रायः अभाव दृष्टिगोचर था। फलस्वरूप विगत दिनांक २६ अगस्त १९६९ को श्री जैन मित्र मण्डल, जयपुर का प्रादुर्भाव हुआ। उत्साही एवं सेवाभावी नवयुवकों की इस संस्था ने प्रारम्भ में एक सेवा दल के रूप में समाज के प्रत्येक आयोजन में भाग लेकर काफी ख्याति अर्जित की।

यह वर्ष मण्डल की शैशवावस्था का तृतीय वर्ष है। इतनी अल्प अवधि में ही चतुर्मुखी लोकप्रियता स्वयं ही अपने आप में मण्डल के सेवाभावी कर्त्तव्यनिष्ठ, दक्ष एवम् यत्नशील युवा कार्यकर्ताओं की क्रियाशीलता का प्रमाण है। अपनी कर्त्तव्य परायणता, कार्य करने की दक्षता एवं संगठनात्मक स्वरूप के कारण मण्डल ने समाज में अपना प्रतिभाशाली स्थान बना लिया है।

विगत वर्ष में मण्डल की विभिन्न गतिविधियां एवं प्रवृत्तियों की एक झलक यहां प्रस्तुत कर रहा हूं और आशा करता हूं कि भविष्य में हमें समाज की और अधिक सेवा के लिए आप सभी का और अधिक आत्मिक सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

मण्डल की निवर्तमान कार्यकारिणी समिति का विगत दिनांक २६–९–७१ को गठन किया गया था जिसमें श्री सुशीलकुमार छुरड़ अध्यक्ष, श्री कनक श्रीमाल उपाध्यक्ष, श्री उम्मेदचन्द बराड़ी सचिव, श्री विजय कुमार गोढा उपसचिव, श्री प्रकाशचन्द बांठिया कोषाध्यक्ष, श्री सुरेन्द्र धराठी संगठन मंत्री तथा श्री अजीत लोढ़ा, श्री पदम पुगलिया, श्री अजीत झुनीवाल, श्री बलवन्त छजलानी, श्री विजय बांठिया और श्री अशोक सिंघी को कार्यकारिणी का सदस्य निर्वाचित किया गया।

मण्डल की कार्य समिति के गठन को ४८ घण्टे का समय भी व्यतीत नहीं हुआ था कि हमें एक गहन आघात सहन करना पड़ा। हमारे प्रेरणा स्रोत देश के प्रमुख पुरातत्ववेत्ता, जैन संस्कृति साहित्य एवं इतिहास के महान शोधन कर्ता, ओजस्वी प्रवक्ता, विद्वद्वर मुनि श्री कांतिसागरजी महाराज साहब को प्रकृति के क्रूर हाथों ने हमसे सदैव-सदैव के लिये विलग कर दिया। ऐसे नाजुक समय में मानो यह भी मात्र एक विडम्बना ही थी कि जयपुर श्री संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं सहित लगभग ६०० श्रावक श्राविकाओं के दो यात्री संघ क्रमशः जैसलमेर तथा कच्छ के तीर्थ स्थानों की यात्रा हेतु यात्रा प्रवास में थे। ऐसी परिस्थिति में मण्डल के कार्यकर्ताओं ने मुनिश्री की अंतिम

क्रियाओ इत्यादि से सम्बन्धित सभी प्रबन्ध सुचारुतापूर्वक सम्पन्न कराने मे अपना परिपूर्ण सहयोग प्रदान किया। दिनाक ३०–९–७१ को मण्डल की एक असाधारण सभा मे शोक प्रस्ताव पारित कर तथा अगले दिन ही सार्वजनिक शोक सभा मे मण्डल ने स्वर्गीय मुनिश्री को भाव भीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर अपने आघात को घटाने का प्रयत्न किया।

"सम्बोधिका" प्रकाशन :

मण्डल की वार्षिक स्मारिका—"सम्बोधिका" के प्रथम पुष्प का प्रकाशन गत वर्ष महावीर निर्वाण दिवस को सम्पन्न हुआ। स्मारिका की प्रथम प्रति स्मारिका के प्रधान सम्पादक श्री कनक श्रीमाल ने पूज्य आचार्य श्री धर्णेन्द्रसूरि जी महाराज साहब को भेट की। तदुपरान्त जयपुर जैन श्वेताम्बर समाज के प्रत्येक परिवार तथा अन्य प्रमुख जन तथा भारत भर मे अन्य नगरो की प्रमुख सस्थाओ, पुस्तकालयो, प्रमुख विद्वानो, आचार्य भगवन्तो तथा साधु तथा साध्वी वर्ग को "सम्बोधिका" उपलब्ध कराई गई। मुझे यह बताते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि जिस किसी ने भी हमारी स्मारिका—"सम्बोधिका" के प्रथम पुष्प का अवलोकन किया, उसने ही इसे मुक्तकण्ठ से सराहा है। उसमे प्रकाशित जैन सस्कृति से सम्बन्धित उच्चकोटि की सामगी के साथ ही प्रकाशित अलभ्य चित्रो को भी विशेषत पसन्द किया गया। स्मारिका—"सम्बोधिका" का द्वितीय पुष्प आपके कर कमलो मे है। परम पूज्य गुरुवर स्व० मुनि श्री कातिसागर जी महाराज साहब को समर्पित यह अ क भी आशा है आपको पहले से भी अधिक पसन्द आयेगा।

आमेर, खोग्राम, बरखेड़ा तथा मालपुरा का वार्षिक मेला एव पोषवदी दसमी की रथ–यात्रा—

अपनी स्थापना के वर्ष से ही मण्डल निरन्तर प्रतिवर्ष जयपुर नगर के समीप ही अत्यन्त रमणीय स्थानो पर अलग–अलग तिथियो को वार्षिक मेले के समय आयोजित पूजन तथा स्वधर्मी वात्सल्य के अवसरो पर बस अथवा टैम्पो द्वारा याता–यात तथा स्वधर्मी वात्सल्य मे भोजन व्यवस्थाओ मे सर्वाधिक कार्य भार सभाल कर अपनी कार्य कुशलता, दक्षता एव कर्त्तव्य परायणता का जो परिचय दिया है। उससे जयपुर जैन सकल श्रीसघ परिचित है।

तेईसवे तीर्थंकर भगवान श्री पार्श्वनाथ के जन्म दिवस पोष वदी दसमी को तथा उससे एक दिन पूर्व विशाल रथ–यात्रा की व्यवस्था मे भी प्रति वर्ष मण्डल के स्वय सेवक सक्रिय रहे है।

भव्य दिल्ली-यात्रा—

विगत दिनाक २४, २५, व २६ मार्च १९७१ को भारत की राजधानी दिल्ली मे जगम युग प्रधान भट्टारक, मणिधारी पूज्य दादा साहब १००८ श्री जिनचन्द्र सूरि जी के अष्टम शताब्दी के अवसर पर आयोजित अत्यन्त विशाल समारोह मे मण्डल के तत्वावधान मे लगभग ४०० यात्रियो का श्रीसघ सम्मिलित हुआ। इस भव्य–यात्रा आयोजन मे स्पेशल बसो द्वारा मात्र २५ रु० प्रति यात्री टिकट मे ही दिल्ली ले जाने–लाने के अतिरिक्त श्री हस्तिनापुर तीर्थ की यात्रा, रास्ते मे नास्ते तथा हस्तिनापुर मे भोजन की अत्युत्तम व्यवस्था भी उपलब्ध की गई। श्री हस्तिनापुरजी मे भोजन व्यवस्था हेतु जयपुर के श्री हस्तीचन्द जी सा० महता श्री हीराचन्दजी ढड्ढा व श्री रतनचन्दजी सा० सिंघी आदि का वित्तीय तथा श्री हस्तिनापुर पेढी के प्रबन्धको का क्रियात्मक सहयोग हमे प्राप्त हुआ, जिसके लिये मण्डल उनके प्रति हृदय से आभारी है।

उपर्युक्त व्यवस्था के अतिरिक्त शताब्दी समारोह समिति, दिल्ली के आव्हान पर मण्डल

के लगभग २५ स्वय भक्तों ने दिल्ली स्थित छोटी दादाबाड़ी म ठहरे हुये लगभग १२०० यात्रियो के लिये नास्ता वितरण यातायात व्यवस्था तथा उनके सामान की सुरक्षा हेतु सुरक्षा ग्रह (लाकर) की व्यवस्था के अलावा मुख्य समारोह स्थल मणिधारी नगर म भोजन की परोसगारी आदि म अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर मण्डल को गौरवान्वित किया । दिल्ली यात्रा से सम्बन्धित उत्तम व्यवस्था के लिये हमारा दिल्ली यात्रा प्रबन्ध उप समिति के सयोजक हमारे माननीय अध्यक्ष श्री सुशीलकुमार बुरड तथा सह सयोजको म मेरे दूसरे साथी एव तत्कालीन सचिव श्री उम्मेदचन्द बराठी के अतिरिक्त हमारे अन्य सभी सहयोगी कार्यकर्ता तथा यात्री गण भी प्रशसा के पात्र हैं जिन्होंने अपने पूर्ण सहयोग द्वारा इस आयोजन को आशातीत सफलता प्रदान की ।

सघ भक्ति —

शताब्दी समारोह म भाग लेकर दिल्ली स वापस लौटते हुय विभिन्न नगरो के लगभग ग्यारह यात्री सघो के स्वागत सवा एव अभिनन्दन का सौभाग्य भी मण्डल को प्राप्त हुआ । बडौदा स पधारे एक यात्री-सघ क सघपति श्री शान्तिलालजी सा पारख ने १०१) रुपय तथा राजीम (म प्र) के यात्री सघ ने ५१) रुपय भेट स्वरुप मण्डल को प्रदान किये मण्डल की ओर स उन्हें धन्यवाद अर्पित किया गया ।

सविधान तथा निर्वाचन —

गत २५ मई ७१ को मण्डल की साधारण सभा म मण्डल द्वारा अपनी उक्त विचार गोष्ठी से पूव पास किये गय मण्डल के सविधान को तुरन्त लागू किये जान के लिये मण्डल की तत्कालीन कार्यकारिणी समिति ने साधारण सभा के समक्ष अपना त्यागपत्र दकर सविधान को लागू किय जाने की घोषणा के साथ ही उसी सभा म नई कार्य-समिति के चुनाव का अनुरोध किया । फलस्वरूप श्री रतनचदजा सा कोठारी (निर्वाचन अधिकारी) की देख-रेख म मण्डल कार्यकारिणी के ग्यारह सदस्यो का विधानानुसार चयन किया गया । कार्य-कारिणी न अपने पदाधिकारियों का चयन भी उसी वक्त सम्पन्न कर लिया। कुछ दिनों बाद नव निर्वाचित कार्य-समिति की प्रथम बठक म श्री प्रवीण जूनीवाल तथा श्री सुभाष गोलछा को कार्यकारिणी का सदस्य मनोनीत किया गया ।

श्री महावीर जयन्ती समारोह —

चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की पावन जन्म जयन्ती जयपुर के दिगम्बर एव श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय मिलकर सामूहिक रुप म अत्यन्त हर्षोल्लास पूवक मनाते हैं। इस अवसर पर आयोजित विशाल जुलूस में इस वर्ष प्रथम बार मण्डल ने अपनी ओर से जुलूस के साथ ठेले म तथा मुख्य समारोह सभा स्थल स्थानीय श्री राम-लीला मदान म वर्ष के शीतल जल-सेवा का सराहनीय कार्य सम्पन्न किया ।

उद्यापन समारोह

इस वर्ष आषाढ मास म पूज्य गुरुदेव श्री कांति सागरजी म सा व मुनि श्री दर्शनसागरजी म सा क सान्निध्य में जयपुर स्टेशन के निकट स्थित मन्दिरजी में श्री वल्लभचन्दजी मसाली की धर्मपत्नी श्रीमती माणकदेवी के श्री बीसस्थानक नवपदादि तप पूर्ति के उपलक्ष म उद्यापन सम्पन्न हुआ । श्री मसाला जी के आमत्रण पर उक्त समारोह पर आयोजित अठाई महोत्सव जुलूस व समस्त श्रीसघ के स्वधर्मी वात्सल्य आदि की व्यवस्था म मण्डल ने अपना सक्रिय सहयोग दिया ।

सगीत विभाग :—

इस वर्ष पर्वाधिराज पर्यूषण से कुछ दिन पूर्व ही हमारे "सगीत विभाग" की स्थापना की गई है। मण्डल के पास इस विभाग की नियमित कक्षा चलाने हेतु अपना कोई निजी भवन नही होने के कारण प्रारम्भ मे ही हमे काफी मुश्किलो का सामना करना पडा। अन्त मे काफी प्रयत्नो के वाद केवल पर्यूषण तक के लिये हमे श्री श्वेताम्बर जैन सैकन्ड्री स्कूल मे एक कमरा सगीत कक्षा के उपयोग हेतु प्राप्त हो सका, उक्त सहयोग के लिये स्कूल के प्रवन्ध समिति के सैकेट्री महोदय तथा स्कूल के प्रधानाध्यापक महोदय के हम हृदय से आभारी हैं।

प्रारम्भ काल मे ही इस विभाग की "सगीत मण्डली" को श्री विनयचन्दजी खवाड, श्री मिश्रीमलजी खिवसरा, श्रीकालूरामजी माणकचन्दजी गोलछा, श्री चम्पालालजी कोचर, श्रीलालचन्दजी वैराठी, श्री वुधसिहजी हीराचन्दजी वैद, श्री नेमीचन्दजी भसाली, श्री डूगरमलजी श्रीमाल तथा श्री प्रतापचन्दजी लूनावत इत्यादि ने अपने यहा मास खमण, अठाई आदि तपस्या आदि के उपलक्ष मे आयोजित जागरणो मे आमन्त्रित किया, मण्डली ने अपने प्रारम्भिक मास काल मे ही उक्त आयोजनो मे प्रदर्शित अपने कार्यक्रमो द्वारा सभी का मन मोह लिया। हमारे सगीत विभाग को हारमोनियम श्री पदमचन्दजी गोलछा की ओर से, तवला श्रीराजरुपजी टाक की ओर से तथा ढोलक श्री कालूरामजी माणकचन्दजी गोलछा की ओर से प्राप्त हुये हैं, अत मैं सगीत विभाग एव मण्डल की ओर से सहयोगी महानुभावो का हार्दिक आभार प्रगट करता हू।

तपस्वियो की भव्य शोभा-यात्राऐं :

परम पूज्य गुरुदेव श्री कातिसागरजी म सा एव शतावधानी विदुषी श्रद्धेय साध्वीजी श्री निर्मला श्री जी म. सा के प्रेरणास्पद प्रवचनो के प्रभाव से इस वर्ष तपश्चर्याओ की तो मानो झडी सी लग गई थी।

श्री कातिसागरजी म सा की निश्रा मे श्री शिवजीराम भवन मे सम्पन्न तपश्चर्याओ के सामूहिक आयोजन जिसमे ७ मास क्षमण, २ सत्रह उपवास, २ ग्यारह उपवास, २ नौ उपवास, २१ आठ उपवास, ७ पाच उपवास तथा २५१ से भी अधिक तीन उपवास करने वाले तपस्वियो ने सामूहिक रुप से भाग लिया। इस अभूतपूर्व आयोजन के अन्तर्गत दि० ६–८–७१ को जयपुर मे प्रथम वार एक सामूहिक भव्य वर घोडे (शोभा–यात्रा) का भी आयोजन किया गया था। शोभा यात्रा के अति विशाल इस जलूस मे इन्द्र ध्वजा, अनेको सजे हुए हाथी, ऊट, घोडे, रथ, पालकी, झाँकिया, भव्य काष्ट निर्मित रथ, कई वैण्ड सैकडो कारे एव साधु एव साध्वी वर्ग के अतिरिक्त हजारो की सख्या मे श्रावक तथा श्राविकाऐं, स्कूल के विद्यार्थी आदि सम्मिलित थे। पचक्खान के एक दिन पूर्व दिगम्बर जैन आचार्य रत्न श्रीदेशभूषण जी महाराज सा ने भी मुख्य समारोह स्थल पर पधार कर तपस्वियो को आशीर्वचन एव प्रेरणादायी प्रवचन दिया।

इस भव्यतम ऐतिहासिक जुलूस को व्यवस्थित करने तथा सम्वन्धित अन्य प्रवन्धो का कार्यभार आयोजको द्वारा मण्डल को सौंपा गया। और मुझे यह कहते हुये अपार हर्ष है कि हमारे कर्त्तव्य परायण साथियो ने उक्त आयोजन को सफल बनाने मे जिस निष्ठा एव क्रियाशीलता पूर्वक अपना योगदान कर मण्डल को गौरवान्वित किया है, वह अनुकरणीय है। इस सफलता के लिये अन्य साथियो के अतिरिक्त विशेष रूप से श्री उम्मेद वैराठी, श्री सुशील वुरड एवम् समाज के कुछ अन्य प्रमुख कार्यकर्ता भी धन्यवाद के पात्र है।

तपश्चर्याओं का दूसरा सामूहिक आयोजन स्थानीय घी वालों का रास्ते स्थित श्री आत्मानन्द जन सभा भवन में साध्वीजी श्रीनिर्मला श्रीजी की निश्रा में सम्पन्न हुआ। इसमें तीन मासक्षमण के तपस्वियों एवं अन्य तपस्विया ने सामूहिक रूप से भाग लिया।

शोभा-यात्रा (वर घोड़ा) से पूर्व जयपुर नरेश श्री भवानीसिंहजी ने समारोह स्थल पर पधार कर तपस्विया का अभिनन्दन किया। इस सामूहिक वरघोड़ा जलूस में भी आयोजकों के आमंत्रण पर मण्डल के स्वयं सेवकों ने व्यवस्था आदि कार्यों में भाग लिया।

पर्यूषण पर्व

इस वर्ष पर्वाधिराज पर्यूषण के पुण्य अवसर पर जहाँ आठों ही दिन प्रात एवं मध्याह्न में हमारे कार्यकर्ता श्री खरतर गच्छ संघ के आमंत्रण पर व्यवस्था सम्बन्धित कार्यों में व्यस्त रहे वो रात्रि में हमारे "संगीत विभाग" ने अपने प्रभु भक्ति स्वरूप अत्यन्त रोचक भजन गायन नृत्य व एकांकी आदि के कार्यक्रम पाच दिन श्रमण नगर के मध्य स्थित पाचों मन्दिरों में एवं एक दिन श्रीशिवजीराम भवन व श्री आत्मानन्द भवन में मात्र २० दिन से भी कम की तैयारी द्वारा ही प्रस्तुत कर अत्यन्त लोकप्रियता अर्जित की। संगीत मण्डली के सदस्या द्वारा मधुर लहरी में प्रस्तुत भजन गायन छोटी-छोटी बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत भावपूर्ण आकर्षक नृत्य तथा भिन्न-भिन्न सदस्यों द्वारा जन संस्कृति में प्रेरित रोचक एकांकी इत्यादि की धर्मात्माओं एवं दर्शकों ने काफी प्रशंसा की। इस विभाग की सफलता के लिए इस विभाग के संयोजक श्री माणकचन्द गोलेछा तथा सह संयोजक श्री फतहसिंह बरड़िया विशेषत धन्यवाद के पात्र हैं।

एक दिवसीय तीर्थ यात्रा —

पर्यूषण पर्वाराधन के उपरान्त जयपुर के समीप ही स्थित विभिन्न तीर्थ स्थानों की यात्रा विगत दो वर्ष पूर्व हीं श्री सुदर्शनलाल जी कराठी द्वारा प्रारम्भ की गयी थी। इस यात्रा के अन्तर्गत यात्रियों को मुख्यत मोहनबाड़ी दादाबाड़ी पुराना घाट भानजा फाटक चाकसू ग्राम बरखेड़ा ग्राम जयपुर स्टेशन आमेर तथा सांगानेर स्थित मन्दिरों आदि के दर्शनों का अवसर प्राप्त होता है। इस वर्ष लगभग १०० से भी अधिक यात्रियों ने इस का लाभ लिया। आयोजकों के आवह्न पर बस एवं अन्य व्यवस्था का कार्य गत वर्ष की भांति ही इस वर्ष भी मण्डल के स्वयं सेवकों ने सफलता पूर्वक सम्पन्न किया।

मालपुरा ■ री पालता संघ —

हाल ही में पूज्य श्री कांति सागरजी म सा की प्रेरणा से श्री सीतलदासजी धनपतसिंहजी हरकचन्दजी प्रेमचन्दजी एवं सुरेन्द्रकुमारजी रायपति द्वारा जयपुर से मालपुरा का ■ री पालता चतुर्विध पैदल यात्री संघ निकाला गया। मण्डल उक्त आयोजन में भी अपनी सेवाएं अर्पित करने में पीछे नहीं रहा। यात्री संघ में शामिल सभी यात्रियों के समस्त सामान की सुरक्षा समय समय पर उन्हें वह सामान उपलब्ध कराने तथा फिर पुन वापस सम्हालने का पूर्ण जिम्मेदारी पूर्ण भाव मण्डल को सौंपा गया था। इस जिम्मेदारी को जिस दक्षता पूर्वक हमारे कुशल कार्यकर्ताओं ने निभाया उसकी संघपति तथा सभी यात्रियों ने सराहना की है। इतना ही नहीं भोजन व नाश्ता उपलब्ध कराने तथा अन्य कार्यों में सहयोग के साथ ही हमारे "संगीत विभाग" ने जगह-जगह अपने भक्तिपूर्ण आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत कर मानो सभी का मन मोह लिया था। मालपुरा

पहुँचने पर सघपति जी को मान-पत्र एव पुष्प माला अर्पित कर उनका अभिनन्दन किया गया। सघपति जी ने मण्डल की सेवाओ से प्रसन्न होकर ३०१) रुपये मण्डल को सहायतार्थ प्रदान करने की घोपणा की। इसके अतिरिक्त टोडारायसिंह के श्री पन्नालालजी कोठारी ने २०१) रुपये तथा श्री खेमचन्दजी पारख (दिल्ली वाले), श्री लालचन्दजी वैराठी, श्री रतनचन्दजी सिंघी तथा श्री नेमीचन्दजी मसाली, प्रत्येक सज्जन की ओर से भी १०१) रुपये तथा श्री दौलतचन्दजी महता द्वारा ५१) रु० भी मण्डल को सहायतार्थ प्रदान करने की घोपणा की गई। सभी सहयोगियो को हमारे अध्यक्ष महोदय ने आभार प्रदर्शित किया। उक्त समारोह मे मण्डल की सफलता के लिये विशेषत श्री सुशील बुरड, श्री माणक गोलछा, श्री अनिल जैन व अन्य सहयोगी कार्यकर्ता भी धन्यवाद के पात्र हैं।

भावी गतिविधियां —

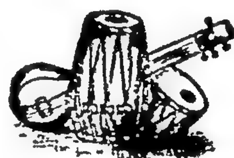
मण्डल द्वारा अपनी भावी गतिविधियो मे एक पुस्तकालय एव वाचनालय तथा एक नि शुल्क धर्मार्थ औपधालय की स्थापना का निर्णय लिया जा चुका है। पुस्तकालय योजना के अन्तर्गत समाज के निर्धन वर्ग के विद्यार्थियो को सम्पूर्ण सत्र के लिये पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध कराने का भी प्रावधान है। सभी गतिविधियो को कार्य-रूप प्रदान करने मे हमारे समक्ष समस्या, मुख्यत उपयुक्त भवन का अभाव है। मुझे यह बताते हुये अत्यन्त खेद अनुभव हो रहा है कि मण्डल ने सामाजिक कार्यों के प्रमुख केन्द्र श्री शिवजीराम भवन मे, भवन के बाह्य ओर स्थित वर्षो मे खाली पडी दूकान को किराये पर उपलब्ध कराने का श्री श्वे० जैन खरतरगच्छ सघ मे, स्थानीय तेरापंथी भवन के बाहर खाली दूकान किराये पर तथा श्री पूज्य जी महाराज के बडे उपासरे मे उपयुक्त स्थान इस हेतु प्राप्त करने की चेष्टा की किन्तु सम्बंधित व्यक्तियों मे इस सम्बन्ध मे सहयोग नही मिल सका है, आशा है निकट भविष्य मे शीघ्र ही किसी उपयुक्त स्थान की व्यवस्था होने पर हम अपनी वर्तमान प्रवृत्तियो का और अधिक प्रसार तथा भावी प्रवृत्तियो को मूर्तरूप प्रदान करने मे सफल हो सकेंगे। समाज के प्रत्येक वर्ग से पूर्ण सहयोग की अपेक्षा के साथ ही मैं अपने सभी सहयोगी बन्धुओ का पुन हार्दिक आभार एव धन्यवाद करता हू।

अधिकतम सहयोग की आशा मे!

भवदीय

विजयकुमार लोढा—सचिव,

श्री जैन मित्र मण्डल, जयपुर।



आज हमारे राष्ट्र पर संकट के बादल मंडरा रहे है। शत्रु ने हम पर पुन आक्रमण किया है। हमारी आजादी फिर खतरे मे है। ऐसी परिस्थितियों में हम सभी का कर्त्तव्य है—अपनी पूरी ताकत के साथ अपने राष्ट्र व स्वतन्त्रता की रक्षा करना। हम सभी तैयार है, और दुश्मन को ऐसा सबक सिखाने के लिये कटिबद्ध है कि वह भविष्य मे फिर कभी हमारी पावन भूमि की ओर आंख उठाने की भी हिम्मत न कर सके।

❀ श्री जैन मित्र मण्डल जयपुर ❀

कार्यकारिणी

सत्र १९७१-७२



बायें से दायें बैठे हुए—सर्वश्री प्रकाशचन्द बाठिया—कोषाध्यक्ष श्री विजयकुमार गोधा—सचिव श्री सुशीलकुमार बुरड़—अध्यक्ष श्री कनक श्रीमाल—उपाध्यक्ष श्री विमलचन्द मसानी उपसचिव तथा श्री माणकचन्द गोलछा संगठन मंत्री

बायें से दायें खड़े हुए—सर्वश्री सुभाषचन्द गोलछा श्री अजीतकुमार लोढ़ा श्री विजयचन्द बाठिया श्री प्रकाशचन्द महता, श्री वंशीधर सेठिया तथा श्री अजीतकुमार जूनीवाल—कार्यकारिणी के सदस्य

एक समर्पित व्यक्तित्व

★ गुलाबचन्द गोलेछा

एक कलाकार, एक आस्था जिन शासन सेवा में समर्पित एक जीवन-जन एवं जनतक मान्यताओं का एक प्रखर ओजस्वी प्रवक्ता। अल्प जीवन-काल में इस महान् व्यक्ति ने जैन साहित्य एवं संस्कृति की जो सेवा की भावना की वह उस रत्नाकर धर्म के महान् धुरंधर साधक शताब्दियों के समकक्ष ले जाती है। ..."

लेकिन जैसी हमारी सामाजिक परम्परा रही है विशेषकर खरतरगच्छीय-उस सारे ज्ञान ध्यान को हमने अत्यन्त आदर पूर्वक झाड़-पोंछ कर अच्छे मूल्य की अलमारी और ताले में प्रतिष्ठापित कर लिया है। शायद ज्ञानपंचमी के पुण्य दिवस पर श्रद्धानुसार सामर्थ्य के अनुसार उस पर कुछ अक्षत चढ़ाकर वासक्षेप डाल दें। बस ज्ञानपूजा का हमारा कार्य पूर्ण हो जायगा।"

स्व० मुनि श्री कान्तिसागरजी महाराज साहब के युग प्रवर्तक व्यक्तित्व का सारगर्भित विवेचन तथा उन्हें सादर श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के साथ ही युवाहृदयी श्री गुलाबचन्दजी गोलेछा ने समाज द्वारा मुनि श्री के अप्रकाशित साहित्य सृजनों, उनके तथा कई अन्य साहित्य एवं ज्ञान-भण्डारों की असुरक्षा एवं दुरुपयोग पर करारा प्रहार किया है। प्रस्तुत है लेखक द्वारा सत्य की यह निर्भीक अभिव्यक्ति।

—सम्पादक

केवल एक सप्ताह का अन्तर रहा और उनसे हमने एक अमूल्य निधि सदा-सदा के लिए छीन ली। सितम्बर १९[illegible] में यात्रा संघ के साथ मैं भी [illegible] राणकपुर आदि स्थानों की यात्रा के लिए जयपुर से रवाना हुआ। पुष्कराज [illegible] हम लोग ८ सितम्बर की रात्रि को पहुंचे और दूसरे दिन प्रातःकाल जयपुर से आने वाले फोन से हमें स्तब्ध कर देने वाला समाचार मिला कि मुनि श्री कान्तिसागरजी महाराज का दिनांक २८ को ही प्रातः ५ बजे देहान्त हो गया। एकाएक अकस्मात् था यह समाचार। मानसिक तौर पर हमारी कोई तैयारी नहीं थी इस आकस्मिक धक्के को सहन कर पाने की। उनकी अन्तिम क्रिया में सम्मिलित होने का कोई उपाय नहीं था अतएव वहीं से सारी

व्यवस्था के सुचारु रूप से उनके मंगलमय जीवन के अनुरूप सम्पन्न करा देने की भावना थी। जयपुर श्री संघ ने अपने सहयोगियों से प्राप्त राशि जैसे इसने अपनी श्रद्धांजलि अन्तर्गत [illegible] प्राप्ति कर दी।

पालीताणा से जयपुर चातुर्मासार्थ पधारने पर उनसे निवेदन करता हूँ कि [illegible] जो जीवन सम्पर्क बना वह उनके जयपुर प्रवास में अत्यन्त ही आत्मपूर्ण आत्मिक सम्बन्ध में परिवर्तित हो गया। १६ जुलाई, १९६६ को उन्होंने जयपुर प्रवेश किया था, ठीक उसी दिन से उनके देहावसान की तिथि से एक सप्ताह पूर्व तक प्रतिदिन आठ से उनकी सेवा में रहने का अवसर सौभाग्य से मुझे मिला। दुर्दैववश जिस प्रकार रोग ने उन्हें जकड़ लिया था उसमें यद्यपि अधिक चिन्ता [illegible] या तो संकेत मात्र भी नहीं था फिर भी मेरी इच्छा उस समय कुछ दिनों के लिए भी जयपुर छोड़ कर जाने की नहीं थी। संघ में जाने वाले अन्य साथियों का अत्यन्त ही आग्रह होने से यात्रा पर जाने के पूर्व उनकी अनुमति लेने गया। बहुत ही प्रसन्न-चित्त से उन्होंने आज्ञा दी और कहा कि इन पन्द्रह दिन में कोई विशेष फर्क नहीं होगा तुम सहर्ष जाओ, वहां से आने के पश्चात् अस्पताल छोड़ने की बाबत विचार कर लेंगे। तब मैं नहीं सोच पाया था कि वे अस्पताल छोड़ने की बात ही नहीं कर रहे थे बल्कि संसार छोड़ने की बात ही अप्रत्यक्ष रूप से कर गये। यात्रा से वापस आने पर पता चला कि देहान्त से दो घण्टे पूर्व भी उन्होंने मुझे स्मरण किया था और यह कहा था कि अब यात्रा से मेरे लौटते ही अस्पताल छोड़ देंगे।

लगभग एक वर्ष के समय में उनका जो स्नेह, विश्वास मुझे मिला वह जीवन पर्यन्त मेरी पूंजी रहेगी। वे स्वयं परम निष्णात सिद्ध चिकित्सक थे, [illegible] चिकित्सा [illegible] नाम [illegible] किया था। [illegible], लेकिन [illegible] होगा।

मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि जैन [illegible] साधु-संस्था में [illegible] विशेष [illegible], [illegible] के प्रति [illegible]। लगभग १४ वर्ष पूर्व [illegible] चातुर्मास [illegible] पूर्ण रूप से स्मृति में है। इसके बाद उनसे दूसरे [illegible] दर्शन की पूर्ति [illegible]। यह तो मन ही [illegible] कि [illegible] जाने।

एक चमत्कार एक घटना, एक शासन सेवा में समर्पित एक जीवन—जैन एवं जैनेतर मान्यताओं का एक प्रकार [illegible]। अल्प जीवन काल में इस [illegible] ने जैन साहित्य एवं संस्कृति की जो सेवा की, साधना की, वह उसे जैन धर्म के महान् धुरन्धर आचार्यों के समकक्ष ले जाती है। भगवान् शंकराचार्य ने ३३ वर्ष की अल्पायु में वर्तमान वैदिक धर्म की अलख जगा दी, ज्ञान की असीम धारा प्रवाहित कर दी, उन्हीं के अनुरूप ४६ वर्ष की अल्पायु में मुनिवर ने भी लगभग वही कार्य सम्पादित किया। जैन पुरातत्व लगभग उपेक्षित विषय रहा है। अन्य धर्मावलम्बी विद्वानों ने भले ही अपनी साधना के सुमन इस पर अर्पित

किए हों किन्तु उन साधुओं में सर्वप्रथम मुनि श्री जिन विजयजी ने और उनके पश्चात् मुनि श्री ने ही इस ओर कार्य किया। अब तो बहुत लोग इस क्षेत्र में आ गये हैं लेकिन जिस लगन से, जोश से, प्रखरता से, तेजस्विता से स्वपक्ष का अनुसंधान करके गौरवपूर्ण भाषा में उसका प्रतिपादन उन्होंने किया वह बेमिसाल रहा है।

उनकी कुछ पुस्तकें पढ़ी हैं, लेख भी पढ़े हैं, डायरियां पढ़ी हैं, टिप्पणियां, आलोचनाएं पत्र हैं सब में एक ही दृष्टिकोण परिलक्षित होता है—स्वाभिमान पूर्वक अपने पक्ष का प्रतिपादन अत्यन्त सारगर्भित सहज सौष्ठिवपूर्ण विवेचना, समग्र ज्ञान का ओजस्वी दर्शन। अभी कुछ समय पूर्व ही मैं उदयपुर गया था। साहित्य सृजन काल में उन्होंने जितना कुछ लिखा है, प्रकाशित कराया है या उनके बारे में प्रकाशित हुआ है, उनके कार्य पर टिप्पणियां हुई हैं इत्यादि का एक अच्छा खासा संग्रह वहां मिला। उसे ले तो आया लेकिन जैसी हमारी सामाजिक परम्परा रही है, विशेष कर खरतर गच्छीय, उस सारे ज्ञान स्रोत को हमने अत्यंत आदरपूर्वक झाड़ पोंछ कर अच्छे मूल्य की अलमारी और ताले में प्रतिष्ठापित कर दिया। शायद ज्ञान पंचमी के पुण्य दिवस पर श्रद्धालु जन सामर्थ्य के अनुसार उस पर कुछ धन चढ़ा कर वासक्षेप डाल दें। बस ज्ञान-पूजा का हमारा कार्य पूर्ण हो जायेगा।

उनके साथ जो ज्ञान एवं साहित्य का भंडार था उसका भी यही सौभाग्य रहा। वह भी पूर्णतः सुरक्षित हो गया। विडम्बना तो यह है कि उससे अधिक और अच्छा ज्ञान का उपयोग हम समझ में ही नहीं आता। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि जयपुर में इसके अलावा और भी साहित्य भंडार संघ के पास इसी प्रकार सुरक्षित पड़े हैं। शायद पिछले बीस वर्षों में उनमें से एक भी पुस्तक किसी ने देखने का भी नहीं निकलवाई, पढ़ने की तो बात ही दूसरी है। मैं भी ऐसा तथाकथित सम्यक् ज्ञान पूजक हूं।

रोगशय्या पर पड़े हुए भी वे साहित्य का सृजन करते रहे। इस हेतु उन्होंने एक प्रकाशन समिति निर्मित कराई और उसका सर्वप्रथम प्रकाशन यति जयविमलकृत ... पर उनका पाण्डित्यपूर्ण विवेचन था। यह कृति प्रकाशित हो चुकी है, प्रेस में तैयार पड़ी है लेकिन हम श्रद्धालु श्रावक अगर ज्ञान पंचमी के दिन पूजा करें तब? शायद यह रचना कभी सबके सामने आ जाये।

मुनिवर के जीवन की घटनाओं का उल्लेख करना मैं अनावश्यक समझता हूं। मेरे सामने तो उनका एक ही पहलू आता है और वह है उनकी ज्ञान की सतत् साधना। वे न केवल शोध पर डाक्टरेट हो प्राप्त कर चुके थे वरन् जर्मन व फ्रेंच भाषा में एम ए भी थे। जैसे जैन पुरातत्व पर उन्होंने शोध की वैसे ही शैव मत की पाशुपत शाखा पर भी उन्होंने कार्य किया। आयुर्वेद के प्रति तो ऐसा महान् कार्य किया है कि जो अभी प्रकाश में भी नहीं आ पाया। उन्होंने गुजराती भाषा में "आयुर्वेद ना अनुभूत प्रयोग" नाम से लगभग १४ पुस्तकों के प्रकाशन की पूरी तैयारी कर ली थी। उसका प्रथम अंक प्रकाशित भी हो गया है। शेष १३ अंकों का भाग्य संभवतः नियति के क्रूर हाथों में चला गया। इन अंकों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित करवाने की योजना भी उनकी थी उसके लिए राजस्थान के एक अपने परिचित तत्कालीन मंत्री से भी उन्होंने लिखा पढ़ी की थी। जिस लगन के साथ जगह जगह भटक कर और पत्थरों को छान बीन कर शोध की तीव्र प्रवृत्ति और कलाकार के भावुक हृदय से जैन संस्कृति के पुनर्जीवन हेतु उन्होंने खोज की पगडंडियां एवं खण्डहरों का वैभव का सृजन किया वह उनके

गहरे अध्ययन एव गवेषणात्मक मेधा की छाप है। उदयपुर के महाराणा भगवतसिंहजी के निमन्त्रण पर एकलिंग भगवान को निमित्त बना कर मेवाड के इतिहास पर जो ग्रन्थ उन्होने तैयार किया वह प्रकाशित हो रहा है । अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का प्रकार्य रहेगा वह ग्रन्थ, यह सुनिश्चित है। इस ग्रन्थ की भूमिका भू० काश्मीर नरेश डा० कर्णसिंह जी ने लिखी है ।

प्रसगवश उनके जीवन की सबसे बडी घटना का जिक्र करना आवश्यक हो जाता है। वह थी उनके उदयपुर चातुर्मास के दौरान राज्य सरकार द्वारा उन पर दुर्लभ चित्र गायब करने का आरोप। मामला जिस तरह लडा गया, जिस प्रकार इसका अन्त हुआ वह उस आरोप का खोखलापन जाहिर करता है। लेकिन उसने उनके जीवन के बहुमूल्य समय और शक्ति का अपव्यय करा दिया। लगभग आठ वर्ष तक वे उदयपुर ही रहे मुकदमे के कारण। ससम्मान मुक्त हुए उस आरोप से। अपने ही बल पर अपने ही साधनो से उन्होने यह मुकदमा लडा। समाज तो उनसे उस दौरान दूर चला गया। इस समय मे ही उन्होने स्थानकवासी समाज के लिए एक शोध प्रबन्ध लिखने का कार्य हाथ मे लिया दुर्भाग्य से वह अपूर्ण रहा। अस्पताल मे चर्चा के दौरान कई बार उन्होने यह कहा था कि स्वस्थ होते ही सबसे पहिले मैं इस कार्य को पूरा करू गा। उनकी यह इच्छा काल ने पूरी न होने दी। एकलिंगजी का इतिहास भी उन्होंने इस मुकदमे के समय मे ही लिखा। इस मुकदमे का पूरा फैसला अभी हाल ही मे मुनि श्री मगल सागरजी महाराज ने भिजवाया है । शीघ्र ही उसकी जानकारी समाज के सामने रखने का कोई अवसर आवेगा ही।

उनके बहुमुखी ज्ञान के अनेको उदाहरण दिए जा सकते हैं। वे लखनऊ के सगीत महाविद्यालय के उपाधि प्राप्त स्नातक थे। जवाहरात उद्योग के क्षेत्र मे भी उन्होंने कुछ प्रयोग किए थे। इस कारण उनके भक्तो की सख्या मे कुछ अप्रत्याशित वृद्धि जयपुर प्रवास के समय हुई थी, लेकिन अस्वस्थ रहने के कारण इन प्रयोगो को वे सुनिश्चित स्वरूप नही दे पाये। उनके परिचय एव सम्पर्क का क्षेत्र बहुत विशाल था। भारत के सुदूर प्रान्तो मे रहने वाले विद्वानो, मनीषियो तथा राजनीतिज्ञो से उनका व्यक्तिगत परिचय था। उत्तर प्रदेश के प्रवास के दौरान किसी समय वे एक प्रमुख अ ग्रेजी दैनिक के सम्पादन मे भी व्यस्त रहे थे। विचारधारा से उस समय उन्हे प्रच्छन्न कम्यूनिस्ट भी माना जाता था। उदयपुर प्रवास मे स्थानीय राजनीतिक हलचलो मे भी उन्होने काफी उत्साहपूर्ण भाग लिया था। और उस ही कारण वे राज्य प्रशासन के कोप का आधार भी हुए, ऐसा भी बहुत से परिचित कहते हैं। अद्भुत स्थिति तो यह हुई है कि एक ओर राज्य प्रशासन उन पर मुकदमा चला रहा था, ठीक उसी समय उनसे राजस्थान की सास्कृतिक परम्परा पर एक विशेष शोध कार्य का सम्पादन भी हाथ मे लेने का अनुरोध शासन ने किया था। उस समय प्रशासन के मुख्य सचिव श्री भगवतसिंहजी मेहता इस कार्य हेतु कई बार मुनिश्री से मिले थे।

वर्तमान मे जयपुर आने का उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि वे कुछ समय यहा स्थिर रह कर सघ को सुगठित करते, साहित्य की सतत् साधना मे लगते। और कुछ ऐसा ठोस कार्य कर जाते कि जिससे जैन शासन की चिर स्मरणीय सेवा हो सके। लेकिन स्वास्थ्य की खराबी ने यह योजना भविष्य के अन्धकूप मे डाल दी। जो वातावरण उनके देहान्त के पश्चात् बना उससे मुझे इतनी निराशा हुई कि समाज और शासन की उन्नति के बारे मे सोचने की तो जैसे मन स्थिति ही नही रही। एक गहरी उदासी सारे कार्य के प्रति आ गई। अब कब कुछ कर सकने की इच्छा

पूरा होगा नियति ना जाने। हम बाह्याडम्बरों में शासन सत्ता की चकाचौंध ऊपरी कार्यवाहियों में ही उलझ गये हैं। मन्दिर विशाल सुन्दर व दर्शनीय बन बनें, आत्म कल्याण हेतु जितना अधिक से अधिक तप करके कर्मों की निर्जरा कर लें, प्रभावशाली भव्य समारोह व आयोजन कर लें, जन समाजोत्थान एवं जन सेवा के सारे कार्य की इतिश्री हो गई। किन्तु वास्तविक और व्यावहारिक जगत् में अपनी जगह पर शान्त विचार पूर्वक अपने बल पर खड़ा रहने की शक्ति कौनसा वैचारिक भूमिका निर्वाह में आयेगी हम धर्म के मूल सिद्धान्तों को अपने जीवन में उनकी वास्तविकता समझ कर उतार पायेंगे स्वयं समझेंगे जानेंगे और करेंगे और दूसरों को इस प्रकार प्रवृत्त होने की कोई राह दिखा पायेंगे क्या? कब होगा यह सब? कौन करेगा? कौन राह दिखायेगा?

मुनिश्री की अन्तिम क्रिया मोहनबाड़ी की शाला भूमि में सम्पन्न हुई। हाल ही में उस पर एक पक्का चबूतरा भी बनवा लिया गया। उनके चरण भी स्थापित कर दिये गए। सम्भवतः यह मान्यता ये दर्शाती हो सकती थी जो भक्तजन अपने गुरु को दे सकें। इसके बाद उनके उठाए गए कार्य को मुख्यतः साहित्य साधना को भी सम्भवतः इसी पक्के चबूतरे के मध्य समाधिस्थ करवाना ही अधिक लाभकारी लगने लगे तो आश्चर्य नहीं होगा। अपनी एक पुस्तक में मुनिश्री ने उदाहरण देते हुए लिखा है कि—गोडप्रदेश में सबसे अधिक ज्ञानवान बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति को देवी की भेंट चढ़ा देना वहां किसी समय में सबसे उपयोगी कार्य माना जाता था। ज्ञानी का इससे अच्छा उपयोग उनके समक्ष नहीं था। देश काल व भाव को समझ कर कार्य करने वाला हमारा यह समाज गोड प्रदेश के निवासियों सा ही आचरण करने में व्यस्त है। प्रमाद और थोथे क्रिया विधानों की बलिवेदी पर साम्प्रदायिक शान्ति की भेंट चढ़ा कर हम सब कार्य पूरा कर चुके हैं। एक समर्पित जीवन का सही स्थान पर समर्पित कर दिया गया।

★★★

जे पाव कम्मेहिं धणं मणूसा समाययंती अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे, वेराणुबद्धा णरयं उवेंति ॥

जो मनुष्य धन को अमृत मान कर अनेकविध पाप कर्मों द्वारा धन की प्राप्ति करता है वह कर्मों के दृढ़ पाश में बंध जाता है और अनेक जीवों के साथ वैरानुबन्ध कर अन्त में सारा धन स्वयं यहीं छोड़ नरक में जाता है।

'उद्देसो पासगस्स णत्थि बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे।
असमियदुक्खे दुक्खी, दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ ॥"

उपदेश की आवश्यकता सामान्य व्यक्ति को होती है विवेकी के लिए कदापि नहीं। अज्ञानी राग-द्वेष में ग्रस्त और कषायों से पीड़ित तथा विषय-भोगों को कल्याणकारी मानकर उनमें आसक्त रहने वाला मनुष्य उनसे उत्पन्न होने वाले दुःखों को शान्त नहीं कर पाता है। अतः शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित वह दुःख चक्र में ही भटकता रहता है।

—भगवान महावीर

हमारा मण्डल परिवार

(सत्र १९७०-७१)

१	श्री सुशीलकुमार बुरड	अध्यक्ष
२	श्री कनक श्रीमाल	उपाध्यक्ष
३	श्री विजयकुमार लोढा	सचिव
४.	श्री विमलचन्द मसाली	उपसचिव
५	श्री प्रकाशचन्द बाठिया	कोषाध्यक्ष
६	श्री माणकचन्द गोलछा	सगठन मत्री एव सयोजक "सगीत विभाग"
७	श्री अजीतकुमार लोढा	सदस्य कार्य-कारिणी
८	श्री प्रकाशचन्द महता	"
९.	श्री विजय बाठिया	"
१०.	श्री बशीधर सेठिया	"
११	श्री नरेशकुमार मोहनौत	"
१२.	श्री अजीतकुमार जूनीवाल	"
१३.	श्री फतेहसिंह बरडिया	सह-सयोजक "सगीत विभाग"
१४.	श्री उम्मेदचन्द बैराठी	सदस्य
१५.	श्री सुरेन्द्रकुमार बैराठी	"
१६	श्री पदमचन्द पुगलिया	"
१७	श्री बलवन्त छजलानी	"
१८	श्री अशोककुमार सिंघी	"
१९.	श्री पदम बडेर	"
२०.	श्री विमलचन्द भडारी	"
२१.	श्री मोतीचन्द जूनीवाल	"
२२	श्री कनक गोलछा	"
२३.	श्री मूलचन्द श्रीमाल	"
२४.	श्री शरदकुमार टाक	"
२५.	श्री निर्मलकुमार टाक	"
२६.	श्री महेन्द्रकुमार टाक	"
२७	श्री योगेन्द्रसिंह वैद	"
२८.	श्री जयकुमार सहमवाल	"
२९.	श्री पारसचन्द श्रीमाल	"
३०.	श्री विजयचन्द बैराठी	"
३१.	श्री शिखरचन्द कोठारी	"

३२	श्री राजकुमार कोचर	सदस्य
३३	श्री मेहतावचन्द बांठिया	,,
३४	श्री अशोककुमार बोहरा	
३५	श्री बहादुरसिंह बांठिया	,,
३६	श्री सुभाषचन्द गोलछा	,,
३७	श्री पदमचन्द महता	
३८	श्री पदम महता	
३९	श्री जतनमल ढोर	,,
४०	श्री केसरीचन्द गुजरानी	
४१	श्री महेन्द्र सिंघवी	
४२	श्री धर्मचन्द महता	,,
४३	श्री नलिन श्रीमाल	
४४	श्री नरेन्द्रकुमार जैन	,,
४५	श्री महेन्द्रकुमार छाजेड़	
४६	श्री अभयकुमार जैन	,,
४७	श्री राजेन्द्रकुमार मसानी	
४८	श्री पदमसिंह कोठारी	
४९	श्री वीरेन्द्रकुमार श्रीमाल	,,
५०	श्री महेन्द्रसिंह महता	,,
५१	श्री कुशलचन्द महता	,,
५२	श्री अनिलकुमार जैन (श्रीमाल)	
५३	श्री नवनीत महता	
५४	श्री कृष्णकान्त महता	
५५	श्री ताराचन्द जैन	
५६	श्री प्रभातकुमार सोढा	
५७	श्री अनिलकुमार जैन (बड़)	
५८	श्री विमलकान्त दगाई	
५९	श्री प्रकाशचन्द बोहरा	
६०	श्री चमनसिंह छाजेड़	
६१	श्री कमलचन्द कोचर	
६२	श्री पारसराज महता	
६३	श्री गुमानचन्द जैन	
६४	श्री सुनीलकुमार सचेती	
६५	श्री राजेन्द्रकुमार गांधी	

खण्डहर ?

★ स्व मुनि श्री कान्तिसागरजी

निर्जन-एकान्त मे अनेक लता एव वृक्षो मे परिवेष्टित, धूलिधूसरित ध्वंसावशेष को दुनिया के लोग भले ही खण्डहर कहे किन्तु मैंने उसे कभी भी खण्डहर नहीं माना। अपितु मानव-संस्कृति के समुज्वल प्रतीक के रूप मे स्वीकार किया है। वह संस्कृति का महान् कीर्तिस्तम्भ है। उसमे स्फूर्तिदायक तत्व है, महती उत्प्रेरक शक्तिया है। भारतीय लोकजीवन को सर्वांगपूर्ण करने की उसमे अद्भुत क्षमता है। उसके अणु परमाणु मे क्रान्ति की चिनगारिया है। वहा के पाषाण शब्दरहित वाणी मे युग-युग का सदेश सुना रहे हैं।

विश्व की दृष्टि मे कहे जाने वाले खण्डहर के कण-कण मे उन उदारचेता वीरो की निर्मल आत्मा जय घोष कर रही है जिन्होने राष्ट्र और सस्कृति के रक्षार्थ हसते-हसते आत्मकर्त्तव्य की बलिवेदी पर अपने आपको होम कर दिया वे उन्नतम आदर्श पोषक भावनाओ का सृजन कर, मानवता को नवजीवन का सचार कर अमर हो गये। उन आत्मीय विभूतियो की ज्योति आज कलात्मक पाषाणो के रूप मे जल रही है, मानवता के प्रशस्त राजमार्ग का प्रदर्शन कर रही है और प्राचीन तत्वो मे ओतप्रोत भावनाओ का ननीन सस्करण उपस्थित कर नव क्रातिकारी-मानव को अग्रिम विकास के लिये उत्प्रेरित करती है, अर्थात् अतीत से अनागत की ओर इ गित करती है। इसलिये मै ऐसे स्थान को अतीत का जीवित प्रतीक मानता हू, जहा पर काव्य की आत्मा, रस की निमल सरिता द्रुत गति से प्रवाहित होती हो। जिसके कण-कण मे रसिकता हो, उसे मै खण्डहर कैसे कह दू ?

उस स्थान के एक २ पत्थर पर जो शिल्पभास्कर्य है, हमारे कलाविलासी पूर्वज और कला के परम साधक प्रतिभा सम्पन्न शिल्पियो का सुस्मरण कराता है। उन्हे देखकर अन्तर्नयन तृप्त होते है। हृदय कमल प्रफुल्लित हो उठता है। भावनाओ का द्वन्द्व मच जाता है। अतीत चित्रवत् सम्मुख उपस्थित हो आता है और कर्ण उन पाषाणो की मूक वाणी-जिसमे विशुद्ध भारतीय लोक जीवन का बहुमुखी चित्र उत्कीर्ण है—मार्मिक विविध रगीन जीवन की कहानी सुनने को उत्सुक हो उठते हैं। बहिर्चक्षु युगल वहा अनन्त शान्ति के सुकुमार और स्वस्थ सौंदर्य की खोज मे विह्वल हो उठते है। मीलो तक की भीषण गति के बाद चरम नव शक्ति को लिये हुये हो ऐसे आत्मबलवर्धक, उत्प्रेरक पुनीत और सरस स्थान को भला, मै खण्डहर कैसे कहूँ।

★★★



भगवान महावीर निर्वाण–स्मृति पर्व

दीपावली

★ साध्वी श्री निर्मला श्री एम ए साहित्यरत्न भाषारत्न

भगवान के निर्वाण के पश्चात् व्याप्त गहन अन्धकार से जब विश्व व्याकुल हो उठा तो उसने दीप प्रज्वलित कर प्रकाश किया। अमावस्या की काली रात्रि के अन्धकार पर दीपमाल द्वारा विजय प्राप्त की गई और वह रात्रि एक ज्योति पर्व दीपावली के रूप में संस्कृति का प्रतीक तथा स्वच्छता प्रकाश एवम् उल्लास का पर्व बन गयी।

प्रस्तुत है श्रद्धेय विदुषी साध्वी जी श्री निर्मला श्री जी म सा की एक रचना।

—सम्पादक

भारत वर्ष धर्मप्रिय देश है इसलिये यहा की जनता अपने पर्वाराधन मे सदैव तत्पर रहा करती है। और इन पर्वों के आराधन का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। जितने भी पर्व हमारे यहा मनाये जाते हैं उन्हें हम दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—(१) लौकिक और (२) लोकोत्तर।

पर्वों के आरम्भ का इतिवृत्त यदि देखा जाय तो हमें यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि प्रत्येक लौकिक पर्व प्राय तीन कारणो से पैदा हुए हैं—कई भय से कई लालच से और कई विस्मय से। नागपंचमी और शीतला जैसे पर्व भय से उत्पन्न हुए हैं। नागपंचमी के दिन यदि नाग की पूजा नहीं की तो नाग काट जायगा और शीतला की पूजा नहीं की तो मानव बीमार हो जायगा—इसी भय से आज ये पर्व मनाये जाते हैं। लालच से उत्पन्न होने वाले पर्वों मे मंगला गौरी लक्ष्मी पूजन आदि उल्लेखनीय हैं कई पर्व विस्मय से भी उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र पूजादि। इस प्रकार उक्त कारणों से लौकिक पर्व की शुरुआत होती है। इस तरह पर्वों का प्रारम्भ मानव की भौतिक वासनाओं का परिचायक होता है किन्तु लोकोत्तर पर्वों का प्रारम्भ ऐसा नहीं होता वे दूसरे दृष्टिकोण को लेकर आते हैं।

अपने अपने दृष्टिकोण से सभी धर्मों में लौकिक और लोकोत्तर दोनों तरह के पर्व हैं। मुसलमानों मे रमजान का पर्व लोकोत्तर पर्व है। व ग्न

दिनो मे कोई बुरा काम नही करते। ईसाइयो मे 'क्रिसमस' का दिन लोकोत्तर पव है। इसी तरह हिन्दू धर्म मे भी है। किन्तु जैन धर्म की उन सबने अपनी अलग ही विशेपता है। उनके जितने भी पर्व है सब लोकोत्तर पर्व ही है। लौकिक पर्व का कही नाम निशान भी नहीं है। लोकोत्तर पर्व आत्मशुद्धि के लिये होते है, इनके द्वारा मनुष्य वासना के पङ्क से मुक्त होता है। जैन शासन मे द्वितीया, पचमी, अष्टमी, चतुर्दशी, नवपदाराधन, तीर्थङ्कर कल्याणक, पर्युषण-पर्वादि सब लोकोत्तर पर्व है। ये पर्व ज्ञान दर्शन और चारित्र की उपासना पर बल देते हुए हमे यह सदेश देते हैं कि तुम अपनी आत्म साधना करो।

उक्त पर्वों की आराधना विशेषत जैन धर्मानुयायी ही करते हैं। किन्तु इनके सिवा कुछ पर्व ऐसे भी हैं जिन्हे जैनो के अलावा हिन्दू भी मनाते हैं। ऐसे पर्वों मे सबसे अधिक उल्लेखनीय पर्व दीपावली है। अनेक शताब्दियो से यह पर्व मनाया जाता है किन्तु अब तक प्राय हमें यह पता नही कि यह पर्व कब चला, क्यो चला और किसने चलाया? कोई इसका सम्बन्ध रामचन्द्रजी के अयोध्या लौटने से लगाते हैं, कोई इसे सम्राट अशोक की दिग्विजय का सूचक बतलाते है, किन्तु रामायण मे इस तरह का प्राय कोई उल्लेख नही मिलता है, इतना ही नही किन्तु हिन्दू पुराणादि मे भी इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख नही मिलता। बौद्धो के जातक मे कार्तिक की रात्रि को होने वाले उत्सव का वर्णन है, परन्तु बौद्ध धर्म मे यह पर्व मनाया ही नही जाता। अब रह जाती है केवल जैन परम्परा।

जैन शास्त्रो मे दीपावली पर्व का वर्णन अच्छी तरह पाया जाता है। उज्जयिनी नगरी मे राजा सम्प्रति ने आचार्य आर्यसुहस्ति गुरुवर्य से पूछा कि "हे पूज्य! जैनागम मे पर्युषणादि पर्व प्रसिद्ध है किन्तु जैनतर मे विख्यात् दीपावली पर्व की उत्पत्ति कैसे हुई? क्योकि उस दिन लोग विविध वस्त्र पहनते हैं। साफ सुथरे मकान, कार्तिक अमावस्या की सध्या तो दीपो के प्रकाश से जगमगा उठते हैं।" आचार्यश्री ने राजा सम्प्रति से दीपावली पर्व की उत्पत्ति का महत्व समझाते हुए कहा कि—श्रमण भगवान् महावीर प्राणत नामक स्वर्ग से च्युत होकर (ईसवी सन् से ६०० वर्ष पूर्व) अषाढ सुदी षष्ठी की मध्यरात्रि के समय माता की कुक्षि मे अवतीर्ण हुए। ईसवी सन् से ५९९ वर्ष पूर्व चैत्र सुदी त्रयोदशी की मध्यरात्रि मे क्षत्रिय कुण्डपुर मे उनका जन्म हुआ। उस पवित्र आत्मा के प्रादुर्भाव से समस्त ससार ने अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया। उनके पिता का नाम था राजा सिद्धार्थ और माता का नाम था रानी त्रिशला। सिद्धार्थ ज्ञातवशीय क्षत्रिय थे। उनका गोत्र काश्यप था और वे शूरवीरता, उदारतादि गुणो के कारण काफी प्रभावशाली थे। उनकी पत्नी रानी त्रिशला वैशाली के अधिपति चेटक राजा की बहन थी।

तीस वर्ष की अवस्था मे श्रमण भगवान् महावीर ने राजकुमारोचित वैभव का त्याग कर मार्ग शीर्ष वदी दशमी के दिन महावीरोचित अन्तिम कोटि की दुष्कर जीवनचर्या अङ्गीकार की। इस सयम मार्ग का पालन उन्होंने अप्रमत्तभाव से किया। उनकी प्रतिज्ञा थी 'किसी प्राणी को पीडा न देना'। वे जगत के प्राणी मात्र को अपना मित्र मानते थे, अत कदापि किसी का अनिष्ट चिन्तन नही करते थे। एकदा एक भयकर दृष्टिविष सर्प ने उनके दायें पैर में दश दिया। तब भगवान ने—"चड कौशिक बुज्झ बुज्झ" ये शब्द कहकर उसके कल्याण की कामना की और उसका उद्धार किया। अपने जीवन मे जितनी भी बाधाये उपस्थित होती थी उन्हे वे बिना किसी दूसरे की सहायता के समभाव पूर्वक सहन करते थे। जो मार्ग उन्होंने स्वय

बताया उसी मार्ग पर दूसरों को ले जाने के लिए उनका उपदेश रहा। जिसका उन्होंने अपने जीवन में पालन नहीं किया ऐसा कोई भी मार्ग दूसरों के लिए उन्होंने नहीं बतलाया। उन्होंने विदेह, अंग, मगध, काशी, कौशल आदि जनपदों में विहार किया। वे चातुर्मास में प्रायः एक स्थान में स्थिर रहते थे और अवशिष्ट आठ मासों में पृथक्-पृथक् स्थानों पर विचरण करते थे।

इस तरह विषम उपसर्ग तथा घोर परिषहों को सहते हुए और विविध तप ध्यान का अभ्यास करते हुए इस अप्रतिम वीर भगवान ने साढ़े बारह वर्ष से कुछ अधिक समय तक कठिन साधना की। उस साधना के दरमियान भगवान ने केवल ३४९ दिन ही पारणा किया था और सभी उपवास निर्जल हुए थे। ऋजुबालिका नदी के उत्तर तट पर स्थित श्यामक के खेत में शालवृक्ष के नीचे निर्जल दो उपवास का प्रत्याख्यान कर आपने शुक्ल ध्यान का आरम्भ किया और शीघ्र ही इस ध्यान की प्रथम दो श्रेणियों को पार करके घातिकर्मों का क्षय किया और उसी समय (वैशाख शुक्ला दशमी के दिन चौथे पहर के समय) ४२ वर्ष की उम्र में आपने केवल ज्ञान को प्राप्त किया।

भगवान महावीर ने केवल ज्ञान हो जाने के बाद लोकोद्धार का काम प्रारम्भ किया। उन्होंने जनता को स्वर्ग-मोक्ष का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिए और धर्म प्रिय बनाने के लिए प्रवचन आरम्भ किया। उनके इन उपदेशों का प्रभाव अत्यन्त व्यापक रूप में हुआ। जिनके प्रवचन द्वारा धर्म-वाणी लोग स्वकल्याणकारक समझ कर अपनी वासना दमन करने के लिए आने लगे। अधिकाधिक उत्सुक हुए लोग दुःख का अनुभव स्वयं के कर्मों के अनुसार होता है दूसरों द्वारा नहीं। सबसे प्रथम उन्होंने गौतमादि ब्राह्मण पंडितों को शिष्य बनाया। ये वेद के मौलिक अर्थ के ज्ञाता थे। किन्तु जब भगवान ने उनको वेद का वास्तविक अर्थ बतलाया तब उनको पारमार्थिक स्वरूप का ज्ञान हो गया। जिन ब्राह्मणों को अपनी जाति का, अपनी विद्या का अभिमान था उनका वह अभिमान भगवान के सामने चूर चूर हो गया। वे भगवान के अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त और समभाव के सन्देश का लोक भाषा-प्राकृत में प्रचार करने लगे।

भगवान महावीर ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। उनके उपदेश से प्रभावित होकर उनके श्रमण संघ में—राजा उदायन, पुष्पपाल, प्रसन्नचन्द्र आदि कई क्षत्रिय राजाओं ने त्याग धर्म को अंगीकार किया। स्कंधक आदि प्रमुख कई तापस भगवान के शिष्य बन गये। धन्ना शालिभद्र, धन्य तथा शिवराज आदि ने त्याग मार्ग को अपनाया।

अनेक स्त्रियां भी संसार की असारता को समझकर उनके श्रमणी संघों में शामिल हो गईं। उनमें चन्दनबाला, मृगावती, जयन्ती आदि राजपुत्रियां, देवानन्दा आदि ब्राह्मण पुत्रियां तथा वैश्य पुत्रियां भी थीं।

उनके श्रमणोपासक वर्ग में—मगध राजा श्रेणिक, कूणिक, राजा चेटक, उदायन, सर्वसिद्धि, चन्द्रप्रद्योत तथा नव लिच्छवी और मल्लगण प्राय सभी क्षत्रिय थे। आनन्द आदि वैश्य श्रमणोपासकों के अलावा शकडालपुत्र जैसे कुम्भकार भी संघ में थे। अर्जुनमाली जैसे दुष्ट से दुष्ट हत्यारे भी उनके पास आकर त्याग करके क्षमा को धारण कर दीक्षित हुए थे।

उनके श्रमण-श्रमणियों का वर्ग बहुत विशाल था। उसमें इन्द्रभूति गौतम, सुधर्मा आदि कई कितने ही महाज्ञानी गणधर थे। तीर्थंकर होने के बाद तीस वर्ष तक समस्त भारत के विविध भागों में विहार करके जनता का उद्धार किया।

परमात्मा की इस देन को भारतीय जनता कैसे भुला सकती है।

तीर्थंकर जीवन का तीसवा चातुर्मास परमात्मा ने अपापापुरी के हस्तिपाल राजा की रज्जुग सभा मे किया। जीवन का यह अन्तिम वर्ष था। इस वर्ष भी प्रवचन देकर पुण्यपालादि अनेक भव्यात्माओ को दीक्षा दी। अपने जीवन की समाप्ति निकट जानकर रज्जुग सभा भवन मे भगवान महावीर ने अन्तिम उपदेश की अखण्ड धारा चालू की जो अमावस्या की पिछली रात तक चलती रही। इस प्रवचन मे अनेक गणमान्य व्यक्ति सम्मिलित हुए थे जिनमे काशी कौशल, नौ लिच्छवी और नव मल्ल जाति के अठारह गणराज विशेष उल्लेखनीय हैं। इस दीर्घ-कालीन देशनामे ५५ पुण्यफलविपाक ५५ पापफल-विपाक और ३६ अपृष्ट व्याकरण सुनाये। अन्त मे प्रधान नामक अध्ययन का निरूपण करते हुए ७२ वर्ष की आयु मे दो उपवास कर भगवान कार्तिक (आश्विण कृष्ण) अमावस्या की पिछली रात को निर्वाण प्राप्त हुए। शास्त्रो की परिभाषा-नुसार निर्वाण शब्द का अर्थ "बुझजाना" होता है। प्रभु महावीर देव की कर्मो की आग सर्वथा बुझ गई और उन्होने शाश्वत सुख को पाया।

यह लोकोत्तर पर्व है। क्योकि इसका सम्बन्ध तीर्थंकर परमात्मा श्री महावीर देव के निर्वाण से है। श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामीजी के कल्पसूत्र मे भगवान महावीर के जीवन का वर्णन करते हुए उनके निर्वाण कल्याणक से सम्बन्धित दीपावली की उत्पत्ति का वर्णन किया है जैसे कि—

"ज रयणि चण समणे भगव महावीरे कला गए, जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, त रयणि चण णव मल्लई णव लेच्छई, काशीकोशलगा अठ्ठारसविगण रायाणो, अमावासाए पाराभोअ पोसहोववास पठ्ठविसु, गए से भावुज्जोए दव्वुज्जोअ करिस्सामो"।

जिस रात्रि मे श्रमण भगवान महावीर स्वामी मोक्ष गये, यावत् सर्व दु खो से मुक्त हुए उस रात्रि को नवमल्ल की जाति के काशी देश के राजा तथा नव लेच्छ की जाति के कोशल देश के राजाओ का किसी कारण वहा पर सम्मिलन था। वे अठारह चेडा राजा के सामन्त कहलाते थे। उन्होंने अमावस्या के दिन ससार समुद्र से पार करने वाला उपवास पौषध व्रत किया हुआ था। भगवान के निर्वाण पर उक्त गण राजाओ ने कहा—"अब ससार से भाव उद्योत चला गया। अब हम द्रव्य उद्योत करेंगे" ऐसे महान् जगदीपक के बुझ जाने पर उसकी कमी को पूरा करने के लिए उस रात्रि मे भव्य दीपमालायें जलाई गई। परमात्मा के निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाने के लिये अनेक देवगण हाथ मे रत्न लेकर आये और मानवगणो ने दीपक जलाये। उस समय उन दीपको के प्रकाश मे अपापापुरी का आकाश प्रदीपित हो गया था। चारो ओर प्रकाश फैल गया था "तत प्रभृति दीपो-त्सव सवृत" तब से दीपावली पर्व प्रारम्भ हुआ।

आज भी परमात्मा महावीर के निर्वाण महोत्सव मनाने के लिये देश विदेश से हजारो यात्रीगण पावापुरी मे आते है। तपश्चर्या और आत्मकल्याण साधनापूर्वक निर्वाणलड्डू चढाते हैं।

अर्वाचीन युग मे प्राय हमे यह कल्पना नही हो सकती कि भगवान महावीर निर्वाण के उप-लक्ष्य मे दीपावली मनाई जाती है। किन्तु उस समय प्रसिद्ध राजघराने के साथ भगवान महावीर का कुलक्रमागत जो सम्बन्ध और प्रभाव तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादि परिवारो मे उनका उपकार था उसे देखते हुए ज्ञात होता है कि राजाओ ने भावज्योति के विरह मे द्रव्य ज्योति से प्रकाश किया। उसकी स्मृति मे तब से आज तक दीपोत्सव पर्व चला आ रहा है।

★★★

जैन समाज में एकता का अभाव और समाधान

★ धनरूपमल नागौरी एम ए बी एड साहित्यरत्न न्यायमध्यमा

जन समाज म इतने खण्ड एव प्रखण्ड हैं जो नगण्य से भेदा के आधार पर आज धज्जकाय बन गये हैं। एक दूसरे की निन्दा का कुचक्र चल रहा है कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष दिगम्बर और श्वेताम्बरो की लडाईया तो आप देख ही रहे हैं। श्वेताम्बरो में भी स्थानकवासी मंदिरमार्गी और तेरापंथी आपस म कटुता भाव रखते हैं। घृणा और द्वेष में ये बीज यदि इसी वेग से पनपते रहे तो एक दिन विघटन की आंधियों म हम इस तरह बिखर जाएगें कि जिसका कहीं पता पता भी न लगेगा। इस प्रसग पर ही प्रस्तुत है जयपुर के श्री धनरूपमलजी नागौरी के विवेचनात्मक विचार।

—सम्पादक

किसी ने ठीक ही कहा है कि सघ शक्ति कलियुगे अर्थात् कलियुग म एकता म ही बल है। कोई भी राष्ट्र देश जाति अथवा समाज एकता बिना जीवित नहीं रह सकता। आज मुस्लिम सिक्ख ईसाई पारसी आय समाजी आदि एकता के बल पर अस्तित्व बनाये हुए हैं। इस लिये यह निर्विवाद है कि आधुनिक युग म जीवित रहने हेतु एकता की परमावश्यकता है। एक म अनेकता दुखदायी और अनेकता म एकता सुखदायी होती है। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। अकेला एक निर्जिव है। अतएव समाज की उन्नति हेतु एकता आवश्यक है।

अब प्रश्न यह है कि एकता का समाज म अभाव क्यों और उसका जुम्मेदार कौन? प्रस्तुत प्रश्न के सम्बंध म हम यहां कहन बातों पर विचार म कर मुख्य-मुख्य हेतुओं को ही खोजने का प्रयास करेंगे।

भगवन्त परमात्मा महावीर ने साधु साध्वी श्रावक और श्राविका को मिलाकर अपने चतुर्विध सघ को आधार शिला रखी यह मानी हुई बात है कि आधार अगर कहीं से भी कमजोर होगा तो वह मकान क्षति ग्रस्त हुए बिना नहीं रहेगा। भगवन्त परमात्मा का यह सघ परमोत्कृष्ट था। भगवन स्वयम् णमोतित्थस्स कहकर सघ को नमस्कार करते थे। इसलिये वे इसका पूर्ण ध्यान रखते थे कि कहीं से भी इस सघ का कोई पाया कमजोर न हो जाय। यही कारण था कि उनके समय म सघ ने बहुत उन्नति की। साधु साध्वी श्रावक तथा श्राविकाओं की उनके समय म अच्छी संख्या थी। उनके बाद म यह क्रम सकडों वर्षों तक इसी

अनुरूप चलता रहा। सघ मे मजबूती रही किन्तु समय परिवर्तनशील हे, इसके थपेडे हमारे इम मघ पर भी पडे। होते-होते-सोलहवी तथा सत्रहवी शताब्दि मे तो एक महान परिवर्तन आया। स्थानकवासी और तेरहपथियो का अभ्युदय हुआ। इधर दिगम्बर, श्वेताम्बर दो भेद तो आचार्य कु दकु दाचार्य से ही हो गये थे। रही मही एकता का विघटन मोलहवी तथा मत्रहवी शताब्दी मे विशेप रूप मे हुआ। मवने अपनी-अपनी खेंचतान की, डोरी को इतनी मजबूती ने खीचा की एकता रूपी डोरी मे गाठे पडगई। इधर गच्छवाद ने जोर पकडा और इससे वैमनस्यता अधिक वढ गई। सव अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग आलापने लगे। भक्तो की भरमार वढ़ गई। उनकी पकडा-धकडी कट्टरता का रूप धारण कर गई। किन्तु हाल वही हुआ कि 'मज' वढता ही गया ज्यो-ज्यो दवा की'। इलाज ला इलाज हो गया। और वढते-वढते स्थिति यहा तक पहुँची कि जितनी कटुता और वैमनस्यता माधु वर्ग मे व्याप्त हुई उतनी श्रावक वर्ग मे नही। श्रावको को तो मोहरा वनाया गया और वही हाल आज भी हे। अधिक वातो को तो छोड दे लेकिन अगर तिथि-चर्चा के विपय को ही लें तो ज्ञात होता है कि इम चर्चा मे ममाज का कितने लाख रुपया दोनो ओर मे खर्च हुआ और कितनी वैमनस्यता, इर्ष्या, द्वेप, कटुता आदि वढी-और अन्त मे परिणाम भी कुछ नही निकला। क्योकि परम श्रद्धेय आनन्दघनजी के शब्दो मे, सव अपनी-अपनी गावैं 'मारग साचा कोहु न वतावैं' की स्थिति वनी रही और आज भी वनी हुई है। ऐमे एक नही अनेक ज्वलन्त उदाहरण एकता के विघटन के लिये जुम्मेदार हैं। अति सरल शब्दो मे 'आज के विघटन का मूलाधार साधु समाज की अपनी पकड है।' श्रावक तो प्रवाह मे वह जाते हैं। इनके इशारे पर लाखो रुपया पानी की तरह वहाकर लडने-झगडने को तत्पर रहते हैं। घणी-खम्मा, अन्नदाता और नहत्तवाणी की रागान्धता के वशीभूत हो, श्रावक वर्ग अशोमनीय एव अवर्णनीय खीचातान मे फमा हुआ है। इमीलिये आचार्य हरिभद्र सूरि जी ने ठीक ही कहा है कि 'दृष्टि-रागन्तु पापीयान्' अर्थात् दृष्टि राग पापियो के लिये है। अनन्तलब्धि के धारक गौतम स्वामी को केवलज्ञान क्यो नहीं हो रहा था? उसका मूल कारण भगवन्त परमात्मा महावीर के प्रति उनका राग था। जव परमात्मा को केवलज्ञान हो गया और गौतमस्वामी को मही स्थिति का वोध हुआ तो उन्हे भी तुरन्त केवलज्ञान हो गया। लेकिन उसी परम प्रभु परमात्मा के हम अनुयायियो मे कितनी रागान्धता है? यह रागान्धता मव तरह से स्वयम् के तथा ममाज के लिये घातक मिद्ध हो रही है। आज हमारी कथनी और करनी मे महान अन्तर आगया है। उपदेश कुछ और देते हैं और करते कुछ और हैं। तात्पर्य यह है कि साधु समाज के विकृत रूप का समाज पर वहुत दुष्प्रभाव पड रहा है। इनके अतिरिक्त श्रावक एव श्राविकाओ मे अध्ययनशीलता का अभाव भी सगठन के विघटन का कारण है। युवावर्ग की ओर कर्णधारो का उपेक्षा भाव, मध्यम वर्ग की दयनीय स्थिति, रचनात्मक कार्यो का अभाव, दकियानुमीपन, आदि एक नहीं अनेको कारण एकता के विघटन के हैं। अत अव थोडा समाधान की ओर भी विचार करलें तो ठीक होगा। सर्व प्रथम हमारा साधु ममाज ममन्वय की नीति का अनुमरण करे तो ममाज मे एकता सरलता से स्थापित की जा मकती है। हमारे भेप अलग-अलग हो, हमारी मान्यताओ मे भी भले ही अन्तर हो, लेकिन मवसे ऊपर उठकर हम सर्वप्रथम यह मोचे कि हमारा पिता एक है। परमपिता प्रभु महावीर एक है। उसका शासन एक है। चतुर्विध सघ एक है, मूल सिद्धान्त एक हैं अत हम उनके अनुयायी एक हो सकते है।

इसके अतिरिक्त समाज में अध्ययनशीलता को बढ़ावा दिया जाय। राष्ट्रभाषा में जन साहित्य का प्रकाशन अधिकाधिक मात्रा में किया जाय। बालकों या प्रौढ़ों के अनुरूप ढालने के लिए सरल योजनायें बनाकर उन्हें क्रियान्वित किया जाय सरल साहित्य छपाया जाय पुस्तकें खोले जायें लघु कथायें उपन्यास एकांकी आदि लिखायें जन दृष्टि से लिखी जायें मध्यमवर्ग को ऊंचा उठाने हेतु ध्यान दिया जाय उन्हें उद्योगशालायें स्थापित कर काम दिया जाय उन्हें अपना समझा जाय प्राचीनता में नवीनता लाने का प्रयास किया जाय। इस प्रकार और भी कई काम हैं जो किये जायें तो समाज में एकता तथा शांति स्थापित की जा सकती है। समाज का विघटन रुक सकता है। समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है। किं बहुना—

★★★



मानवीय जीवन का अमृत   आत्म–विश्वास

मानव–जीवन के समुद्र का मन्थन करने से जो अमृत हाथ आया है वह है आत्म–विश्वास। उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे हृदय के एक कोने में उसका घट भरा पड़ा है। वह बड़ा मधुर है। उसे पाकर तुम अमर बन जाओगे। पथिक! जीवन का प्रासाद इसी आत्म–विश्वास की भित्ति पर आधारित है। संसार में इससे बढ़कर दूसरी और कोई सम्पत्ति नहीं है। जिसने इसे खो दिया उसने सब कुछ खो दिया। इसकी एक–एक बूंद तुम्हारी यात्रा का महान् सम्बल है। स्वयं के शब्दों और कृतियों के छिद्रों से इसके रस को प्रवाहित मत होने दो।

मित्र! ऊपर से श्वास लेना या नहीं लेना जीवित और मृत का लक्षण नहीं है किन्तु आत्म–विश्वास का होना या न होना है। लम्बे–लम्बे श्वास लेने वाले भी इसके अभाव में निर्जीव हैं। उनकी चलना का स्रोत सदा के लिए सूख जाता है। उन्हें हम मिट्टी–पत्थरों के काम आने वाले मृत कलेवरों से अधिक और कुछ नहीं कह सकते।

—मुनि श्री राकेशकुमारजी

धर्म से युवा पीढ़ी विमुख क्यो ?

★ भंवरबाई रामपुरिया कलकत्ता

"हम ही हमारी युवा पीढी की विमुखता के सही जिम्मेदार हैं। हम सुधरें, हमारी धार्मिकता मे कुछ सुधार करें, प्रोग्राम कुछ दिलचस्प बनाये, कडुवी दवा को सुन्दर से कैपसूलस मे बन्द कर देने के समान केवल बचे बधाए धार्मिक क्रियाओं के ढर्रों को बदले, तभी हम अपने कार्य मे सफल हो सकेंगे।"

कितने सुन्दर एव स्पष्ट विचारो की अभिव्यक्ति की है कलकत्ता की बहन भवर बाई रामपुरिया ने उनकी प्रस्तुत मौलिक रचना मे।

—सम्पादक

इस प्रश्न पर विचार करने मे पहले धर्म किसे कहते हैं, इस प्रश्न पर हमे पहले विचार कर लेना चाहिये।

वास्तव मे धर्म कोई वस्तु नही, धर्म कोई पदार्थ नही, धर्म कोई चीज या व्यक्ति का नाम नही, धर्म तो एक मात्र द्रव्य मे निहित अभिन्न, सदा सहचारी गुण किंवा स्वभाव है। जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता, जल का स्वभाव शीतलता है। अग्नि को चाहे जिस स्थान पर चाहे जिस अवस्था मे रखे वह उष्ण ही होगी। यदि उष्णता नही रहेगी तो वह अग्नि ही नही होगी। जल किसी भी दशा मे गर्म नही होगा, अग्नि के सयोग से गर्म किये जाने पर भी अग्नि से अलग हटाते ही जल अपने शीतल स्वभाव की ओर उन्मुख होने लगता है। उसमे रही उष्णता अग्नि का स्वभाव था जल का नही, इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव धर्म, ज्ञान दर्शन चारित्रमय चैतनत्व है। धर्म किसी भी दशा मे, परिस्थिति किंवा अवस्था मे आत्मा से अलग नही हो सकता। यदि दर्शन ज्ञानादि चेतनत्व से आत्मा मुक्त रहे तो वह आत्मा नही, जड पदार्थ ही होगा। धर्म आत्मामय है, आत्मा से भिन्न नही, लेन देन की चीज नही, करने या कराने की क्रिया नही। वह तो अपने आप मे पूर्ण सहज अखण्ड स्वभाव है।

यहा एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि ऐसी बात है तो फिर इन धार्मिक क्रिया-काण्डो का क्या अर्थ। क्या ये अधर्म हैं, धर्म नही है ? जिस प्रकार ईधन के सयोग से जल गर्म हो जाता है उसी प्रकार क्रोधादि कषायो के ससर्ग से आत्मा भी तप्त सतप्त पीडित है, वह कषायो की आच से खौलती है, उबलती है, यह आत्मा का धर्म नही, इसे विभाव कहते है। आत्मा का शात, शीतल अतिमधुरतम स्वभाव व स्वभावान्तर्गत आने वाले समता, सरसता, शाति आदि गुण जो कि क्रोधादि विभावो से आच्छा-

न्ति पडे हैं उन आच्छादना को दूर कर समतादि योग का प्रगटीकरण कराने में सहायभूत जो क्रियायें प्रक्रियायें साधन साधनादि हैं वे सभी धर्म नहीं बल्कि धार्मिक क्रियायें हैं।

सामायिक यानी आत्मा में समभाव की स्थापना के प्रयास में यदि आंशिक सफलता भी न मिले तो वह प्रयास नहीं होता। क्रोधादि दुष्प्रवृत्तियों से आत्मा अनादि काल से घिरी है इनसे आत्मा स्वयं पीडित है और अपने संपर्क में आने वालों को पीडित करती है उनसे मुक्त होने की प्रक्रिया साधना किंवा प्रयत्न का नाम सामायिक है। समता में शांति विषमता में अशांति अशांति में शांति की ओर ले जाने वाली सामायिक।

सामायिक के लिए केवल आसन मुख वस्त्रिका व चवला लेकर ४८ मिनिट बैठ जाना ही पर्याप्त नहीं होगा। हमारी आत्मा पर लगी असंख्याता विषमता की परतों को क्रमशः एक के पश्चात् एक करके साफ करें और साफ करके समत्व भाव का शीतल शांत रसास्वादन करावें तो ही हमारी सामायिक समरस भाव का पान किंवा आस्वादन कराने में सक्षम है नहीं तो वह सामायिक व्यवहार में भले सामायिक कहा जाय पर वास्तव में जिसे सामायिक बताया गया है वह नहीं है।

प्रतिदिन सामायिक करने वाले के जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियां के आने पर अंश मात्र भी समता के दर्शन न हों क्रोधादि कषायों की वही पुरानी धमा चौकडी मौजूद रहे मानापमान की वही उन्मत्तता रहे तो मानना ही होगा कि दवाई ने असर नहीं किया।

इसी प्रकार प्रतिक्रमण को ले लें। पापों से पीछे हटाने का नाम प्रतिक्रमण है। प्रातः व सायं दोनों समय प्रतिक्रमण कर पापों की आलोचना निन्दा गर्हा करने वालों के जीवन में उन्हीं पापों की बार-बार पुनरावृत्ति होती रहे तो प्रतिक्रमण कैसा। झूठ चोरी छल प्रपंच दगा अनीति काला बाजारी हिंसादि यदि जीवन में ज्यों के त्यों दर्शन दें घटने की बजाय बढ़ते ही जाय तो प्रतिक्रमण को पापों से पीछे हटने का बजाय बढ़ना ही जावें तो प्रतिक्रमण का पापों से पीछे हटने की क्रिया कैसे कहा जा सकता है।

वीतराग का भक्त वीतराग का पुजारी यदि राग के गहन गर्त में डूबा रहे। वीतराग की आज्ञानुसार जीवन पथ पर दो-चार कदम भी आगे न बढ़े तो इस पूजा का भी क्या अर्थ?

भगवान की भक्ति, भगवान की पूजा-सेवा भले ही कम हो पर जो हो वह ईमानदारी के साथ हो। भगवान के आदर सत्कार के साथ आज्ञा पालन का लक्ष्य अत्यावश्यक है। यदि उपासक आज्ञापालक नहीं है तो वह वीतराग का सच्चा उपासक नहीं। यदि पिता का पुत्र अपने पिता की सेवा-भक्ति तो खूब करे केसर चंदनादि से चर्चे मेवे मिष्टान्न आदि का भोग लगावे परन्तु पिता के कहे अनुसार न चले तो उसे सपूत नहीं कहा जा सकता।

वास्तव में ये सब धार्मिक क्रियाएं धर्म न होकर धर्म की ओर ले जाने वाला माध्यम हैं। इनका उपयोग इतना ही है कि हमारे जीवन में जो गुप्त सत्वरूप धर्म छिपा है उस धर्म को प्रगट करने में सहायक बनें और हम सच्चे अर्थ में धर्मात्मा बनें।

अब हम अपने मूल प्रश्न "आज की युवा पीढ़ी धर्म से विमुख क्यों है" पर आते हैं।

आज का जनमानस विचारशील है, शिक्षित है तर्कशील व जिज्ञासुवृत्ति वाला है। वह बाबा वाक्य प्रमाण पर विश्वास नहीं कर सकता। वह

जानना चाहता है आपने धार्मिक क्रियाओ से क्या लाभ उठाया ? आपके जीवन मे क्या उपलब्धिया हुई ? क्या आपके प्रयोग सफल रहे, आप अपने ध्येय मे कहा तक कामयाब हुए । उन्हे चाहिये अपनी जिज्ञासाओ का सच और सप्रमाण समाधान । उन्हे चाहिए धर्म के साक्षात् दर्शन । हम कहते है 'इसलिए करो' इस वाक्य से उन्हे सन्तुष्ट नही किया जा सकता । धर्म के लाभ उन्हे करके दिखाने होगे ।

लम्बे-लम्बे तिलक धारी भगवान् के पुजारियो को जब बाजार मे काला-बाजारी, सेल-सभेल, मिलावट, असली-नकली व अन्याय-अनीति दिल खोलकर करते व्यक्ति देखता है । उत्सव, महोत्सव, जीमनवार, पूजा, प्रभावना मे नाम के लिए लाखो रुपये लुटाने वालो को, अपने पडौस मे भूखे, नगे, अर्थ के अभाव व अध्ययन की उम्र मे पेट की चिता मे पडे, भूख की ज्वाला मे सुलगते स्वधर्मी-बन्धुओ के बच्चो मानव पुत्रो को भयकर अभाव की चक्री मे पिसते देखकर भी अनदेखा कर अभिमान मे उन्मत्त देखता है । अपने घर मे दादी, नानी को पूजा, बहिन, मा व पत्नी को प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध करते देखता है । किन्तु दैनिक जीवन मे वही प्रतिदिन की कटा-कटी, वही क्लेश, वही झगडा, वही व्यग्य और तानाकसी, तेरा-मेरा, निंदा विकथा आदि अशातिप्रद, प्रवृत्तिया करते देखता है । इन प्रवृत्तियो मे प्रत्येक सुज्ञ व्यक्ति यह सोचता है कि अभी तक उनके जीवन मे धर्म नहीं आया है ।

मन्दिर और उपाश्रय का धर्म यदि हमारे जीवन मे कुछ परिवर्तन न ला सके, हमारे दैनिक जीवन पर जिस की कोई प्रक्रिया न हो, कोई प्रभाव न हो वह कैसा धर्म ? परलोक मे देव, देवेन्द्र बनाने वाला सामर्थ्यवान धर्म यदि इस जन्म मे हमे मानव भी न बना सके तो ऐसे उधार धर्म पर आज का मानव श्रद्धालु नहीं हो सकता ।

हम स्वय बेईमान, असदाचारी, झूठे बने रहकर युवको को ईमानदार, सदाचारी, सच्चे देखना चाहते हैं । स्वय झूठ बोलने वाले हम, बच्चो को झूठ बोलना देख उन्हे पीटते है, हम स्वय चोरी करते है लेकिन बच्चो को चोरी करने पर सजा देते है । यह व्यवहार बच्चे के मानस मे सघर्ष पैदा करता है । हमारे उपदेश उसे निरर्थक दम्भ मात्र लगते हैं और इसलिए धर्म पर से आस्था डगमगा जाती है ।

एक बार एक महिला एक सत के पास अपने बच्चे को लेकर गयी और बोली—महात्मा ! यह गुड बहुत खाता है, डाक्टर कहता है जब तक यह गुड खाना नही छोडेगा तब तक यह बीमार बना रहेगा । आप इसे गुड न खाने की प्रतिज्ञा दिलाये । महात्मा ने कहा—बहिन ! एक महिने बाद आना । उसी दिन से महात्मा ने स्वय गुड खाने का त्याग किया, क्योकि पहले वे स्वय गुड के स्वाद से मुग्ध थे और जानते थे कि जब तब वे स्वय गुड खाते रहेंगे तब तक बच्चे को गुड न खाने का उपदेश नही लगेगा, इसीलिए उन्होंने पहले स्वय गुड खाना छोडकर, बाद मे बच्चे को उपदेश दिया तो बच्चा तुरन्त मान गया ।

इसी प्रकार महात्मा गाधी जब दक्षिण अफ्रिका मे थे तब 'बा' को रक्त प्रदर की शिकायत हुई । हकीम ने दाल बन्द कर दी पर 'बा' दाल खा ही लेती, परहेज के अभाव में बीमारी बढती चली गई एक दिन बापू ने 'बा' को डाटा तो 'बा' के मुह से निकल गया स्वय क्यो खाते हो । बापू ने उसी वक्त अपना कान पकडा और तुरन्त दाल छोड दी । 'बा' ने बहुत अनुनय विनय की पर बापू की प्रतिज्ञा दृढ थी । 'बा' की बीमारी सदा सदा के

निकल चली गई। यह है सुधार का तरीका। यदि हम धर्मी बनें, हमारे जीवन में धर्म का प्रभाव हो, धर्म में दर्शन हो तो ही हमारी युवा पीढ़ी धर्मनिष्ठ बन सकेगी।

जो उपदेश हम उन्हें देते हैं उस आचरण को हम उनसे पहले करते हैं। वस्तुतः पहले हम अपना जीवन बना कर दिखायें, सामायिक करें और जीवन में समभाव आता जाय। अपने बच्चे में और भाई के बच्चे में, भाई और पड़ोस के बच्चे में जो फर्क नजर आता है वह दूर हो जाय। साधारण बातों में जो मन मुटाव हो जाते हैं वे बड़ी बातों में भी न हों। पर्याप्त अनीति करते हमारा आत्मा पाप से हटने लगे, मानव का कष्ट हम हमारा ही कष्ट समझने लगें, फिर देखें हमारी पीढ़ी कैसे हमारे पद चिन्हों पर नहीं चलेगी? अवश्य चलेगी। बशर्ते हम भी कुछ बन के दिखायें।

हम ही हमारी युवा पीढ़ी की विमुखता के सही जिम्मेवार हैं। हम सुधरें, हमारी धार्मिकता में कुछ सुधार करें, आगम कुछ दिलचस्प बनायें, कड़ुवा दवा को सुगर में कैप्सूल में बंद कर देने के समान कठिन बंध-बंधारण धार्मिक-क्रियाओं के दरों को कम करें तभी हम अपने काम में सफल हो सकेंगे।

★★★

हरकत

मार्ग चलते एक बालक ने एक पत्थर उठाया। पत्थर ने प्रसन्न होकर सोचा — अब तक मैं व्यर्थ ही इन क्षुद्र पत्थरों की टोली के बीच पड़ा था, अब भाग्योदय की घड़ी आई है।

लड़के ने एक मकान के ऊपर की मंजिल की खिड़की का निशाना बनाकर पत्थर फेंका। पत्थर मन में गुनगुना रहा था— अहा! उड़ने में कितना आनन्द है।

कांच की खिड़की झनझना कर टूट गई। पत्थर शीशे को निकाल कर अनसुनी कर बोला— मेरे मार्ग में रुकावट डालने वालों की यही तो दशा होती है। और वह कमरे में किसी राजकुमारी की कोमल एवं गुदगुदी सेज पर गिर पड़ा 'बहुत घूम चुका अब थोड़ा देर विश्राम करूंगा।'

परन्तु तभी दासी ने उठाकर उस हतभाग्य को बाहर सड़क पर फेंक दिया। उन्हीं पहले के पत्थरों की मण्डली में प्रवेश करते हुए उसने कहा— अभी अभी वैभव के साम्राज्य में घूम कर लौटा हूँ। मुझे धनवानों का वहीं मन न। मगर मैं तो आप सबका विनम्र सेवक हूँ। आपके चरणों में ही रहना चाहता हूँ।

तभी उसके प्रहार से टूटा एक कुन्द मुसकराया— तुम कहीं भी जाओ, हरकतों से बाज नहीं आते।

—उपाध्याय अमरमुनि

क्या स्याद्वाद अर्ध–सत्य या संशय है ?

★ मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

भगवान महावीर ने वस्तु के अनेकात्मक स्वभाव को स्याद्वाद द्वारा बतलाया था। विभिन्न विद्वानो मे "स्याद्वाद" की व्याख्या अलग-अलग ढग से की है। सत्य को पहचानने की समग्रदृष्टि के रूप मे स्याद्वाद को न लेकर, अर्ध सत्य या सशयवाद की संज्ञा भी उन्होंने दी है। प्रस्तुत है स्याद्वाद के विषय मे श्रद्धेय मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी की स्पष्टोक्ति ताकि विद्वान स्याद्वाद की यथार्थता को समझ सके और अपने विवेचनो पर पुनः चिन्तन कर सके।

—सम्पादक

भगवान श्री महावीर ने व्यवहार के क्षेत्र मे अहिंसा व अपरिग्रह का अवतरण कर उस समय के धार्मिको को नई दृष्टि दी थी। दर्शन के क्षेत्र मे आग्रह के परिहार तथा जीवन के अनेक उलझन भरे प्रश्नो के समाधान के लिए उन्होंने स्याद्वाद की एक विशेष पद्धति दी। विद्वानो ने भगवान् महावीर महावीर के अहिंसा व अपरिग्रह के विचारो को समझने मे तो दक्षता दिखलाई, किन्तु, आश्चर्य है, स्याद्वाद का हार्द पकड पाने मे वे लडखडा गये। सत्य को पहचानने की समग्र दृष्टि के रूप मे स्याद्वाद को न लेकर अर्ध-सत्य या अपूर्ण सत्य की प्राप्ति का साधन मात्र मानने के लिए ही वे तैयार हो सके। कुछेक विद्वानो ने स्याद्वाद को सशयवाद तक की सज्ञा भी दी। उनका निरूपण रहा, स्याद्वाद का अधिकारी सदैव यही प्रतिपादन करता है कि 'यह भी हो सकता है, यह नहीं भी हो सकता है।' उन विद्वानो मे ब्रह्मसूत्र के भाष्यकार श्री शकराचार्य, भू पू राष्ट्रपति डा एस राधाकृष्णन्, सुप्रसिद्ध सांख्यिकी विद्वान् प्रो० महलोनोबिस, कविवर डा० रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि हैं। इन्ही विद्वानो का अनुकरण करते हुए अनेक विद्वान् उसी विवेचन को अपने साहित्य मे तथारूप ही दुहराते रहे है। सद्य प्रकाशित 'गान्धी युग पुराण' का स्कन्ध पाच, खण्ड दो देखा तो यह धारणा विशेष पुष्ट हुई। डा० सेठ गोविन्ददास तथा डा० ओमप्रकाश शर्मा ने इस ग्रन्थ मे स्याद्वाद का सशयवाद के रूप मे विवेचन कर उन्ही प्राचीन विचारो की पुनरावृत्ति करने का प्रयत्न किया है तथा कविवर श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने इसी ग्रन्थ की भूमिका मे उसकी पुष्टि करने का प्रयत्न किया

है। विज्ञ स्याद्वाद की यथार्थता तक पहुंच सकें तथा अपने निर्णय पर पुनः एक बार चिन्तन कर सकें यह प्रस्तुत निबन्ध का अभिप्राय है।

सत्य क्या है ?

सत्य क्या है यह बहुत बार अज्ञात ही रहता है क्योंकि उसका छोर बहुधा आग्रही व्यक्तियों के हाथों में रहा है। वे एक दृष्टि से कथन करते हैं और उसके अन्य अंशों को सर्वथा नकारते हैं। इसी के साथ यह भी प्रश्न उठता है क्या सत्य और असत्य के बीच अर्ध सत्य या अपूर्ण सत्य का भी कोई वर्गीकरण होता है ? यहीं से विवाद का प्रारम्भ हो जाता है और सत्य कहीं छूट जाता है। वास्तविकता यह है कि सत्य अनुभूति-गम्य है शब्द-गम्य नहीं। जब अभिव्यक्ति के लिए उसे शब्दों का जामा पहनाया जाता है वह साकार हो उठता है और एक व्यक्ति द्वारा अधिगृहीत सत्य का दूसरे व्यक्ति द्वारा भी परिगमन कर लिया जाता है। पर सत्य की परिपूर्णता का शब्दों का सामर्थ्य अपने में बांटा पाने में कभी सक्षम नहीं होता। वह उसके किसी अंश को ही ग्रहण करता है और अन्य अंशों से कभी नकारता नहीं है। उदाहरणार्थ सम्मुखीन व्यक्ति का चेहरा देखकर उसके रंग-रूप आदि के बारे में कथन किया जाता है पर उसके पृष्ठवर्ती दूसरे भाग का किसी भी परिस्थिति में निषेध नहीं किया जाता। वहां सत्य है। यदि निषेध किया जावे तो जिसके लिए विधान किया जा रहा है वह स्वयं में ही अस्तित्व-हीन हो जाता है। फिर 'यह सत्य है' यह कथन ही अपने आप में निरर्थक हो जाता है। तात्पर्य है निरपेक्ष कथन होता ही नहीं है और यही सापेक्ष-पद्धति स्याद्वाद की अनिवार्यता कराता हुआ सत्य के आन्तरिक कक्ष तक पहुंचता है। यही कारण है अर्धसत्य या अपूर्ण सत्य की कोई अभिधा बनती ही नहीं।

स्याद्वाद क्या है ?

बहुधा देखा जाता है जीवन का व्यवहार विधि-निषेध के युगल पार्श्वों के बीच से गुजरता है। दार्शनिक शब्दों में इसे सत् असत्, एक-अनेक नित्य अनित्य वाच्य अवाच्य आदि के रूप में निरूपित किया गया है। व्यवहार में विधि-निषेध का क्रम चलता है। प्रश्न रहता है, विरोधी युगलों को एक ही पदार्थ में कैसे निरूपित किया जा सकता है ? जिस पदार्थ में जिस सत्ता का अधिग्रहण किया जाता है क्या उसी पदार्थ में कोई प्रतिरोध भी हो सकता है ? अस्तित्व और नास्तित्व का यह स्वीकार तथा निषेध अपने में जटिल पहेली बनता है और यहीं से संशय का प्रारम्भ हो जाता है। भगवान् महावीर ने सिया अत्थि सिया णत्थि अपेक्षा-विशेष से वह है और अपेक्षा-विशेष से वह नहीं है' इस संक्षिप्त वाक्य के आधार पर इस उलझन को सुलझाया है। उन्होंने कहा है सापेक्ष व निरपेक्ष उभय स्वरूपात्मक वस्तु-स्वभाव को ग्रहण करना ही यथार्थ दृष्टि है। किसी भी पदार्थ का आत्यन्तिक निषेध तथा आत्यन्तिक विधान नहीं होता। जिस अपेक्षा से वह है उस अपेक्षा से उसका पूर्ण प्रतिनिधित्व है और जिस अपेक्षा से वह नहीं है उस अपेक्षा से वह है ही नहीं।

प्रत्येक पदार्थ में अनन्त स्वभावों की सत्ता है और वह उस पदार्थ में किसी भी अन्य स्वभाव की प्रतिरोधिनी नहीं है। इसीलिए विरोधी युगलों का सहअस्तित्व भी सहज सम्भाव्य है। अग्नि जीवन दायक तत्व भी है और प्राण-नाशक भी। यदि पाचन-क्रिया के रूप में उसका उपयोग है तो वह जीवन-दायक है और उसका (अग्नि का) जो उग्र रूप है वह प्राण-नाशक भी। पानी व्यक्ति के लिए संजीवनी भी है और डूबने वाले के लिए घातक भी। एक प्रकार के वस्त्र सर्दी में उपयोगी हैं, वे

वे ही वस्त्र गर्मी मे निष्प्रयोगी भी। एक प्रकार का भोजन एक व्यक्ति के लिए बल-वर्धक है और दूसरे व्यक्ति के लिए वही भोजन नाना व्याधिया उत्पन्न करने वाला भी। रेखा छोटी भी हो सकती है और बडी भी। यदि उस रेखा के पास मे बडी रेखा खीच दी जाती है, तो वह छोटी हो जाती है और छोटी रेखा खीच दी जाती है, तो वही रेखा बडी भी हो सकती है। तात्पर्य यह है कि, प्रत्येक पदार्थ, कार्य व व्यक्ति मे सापेक्षता है, क्योकि वह देश, काल आदि की सीमाओ से घिरा रहता है।

विरोधी युगलो का सहभाव

पदार्थ मात्र मे अस्तित्व व नास्तित्व जैसे विरोधी युगलो का युगपत् सहभाव सहसा व्यक्ति को चक्कर मे डाल देता है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति का चिन्तन सदैव निरपेक्ष होकर चलता है, जबकि प्रत्येक व्यवहार अपेक्षा के साथ प्रतिक्षण बधा रहता है। व्यवहार और चिन्तन की इस खाई का अनुभव करने से व्यक्ति चूक जाता है। स्याद्वाद के साथ से यही आकर उसका सम्बन्ध टूट जाता है और उलझन के साथ सशय का अनायास आरम्भ हो जाता है। यह सर्व सम्मत मान्यता है कि व्यक्ति निरपेक्ष होकर उसी समय अपने अस्तित्व को स्थिर रख सकता है, जबकि उसकी चित्सत्ता सर्वथा विकसित होकर परिपूर्ण बन जाती है। जब तक इस स्थिति मे नही पहुचा जाता है, तब तक वह सापेक्षता को गौण करने का मात्र केवल बहाना कर सकता है, पर उसका यथार्थ मे निर्वाह नही हो सकता। और जब सापेक्ष स्थिति जीवन के लिए अनिवार्य बन जाती है तो अस्तित्व-नास्तित्व का सघर्ष न रहकर सहभाव हो जाता है। उदाहरणार्थ—जिस समय जिस पदार्थ के अस्तित्व पक्ष की विवक्षा की जा रही है, उसी पदार्थ के इतर पक्षो का नास्तित्व भी तो अभिवाच्य नही होता है। केवल मुख्य-गौण का ही वहा प्रसग होता है।

भगवान् श्री महावीर ने प्रत्येक पदार्थ मे प्रतिक्षण उत्पाद और व्यय का प्रतिपादन किया है। उत्पाद और व्यय का यह नैरन्तरिक सहभावी क्रम पदार्थ की दीर्घकालीन पर्यालोचना मे हेतुभूत होता है तथा उसकी जीर्णता और नवीन उत्पत्ति के रूप मे स्पष्ट होकर उलझन भी समाप्त कर देता है। इसी तात्पर्य की स्पष्टता से इस प्रकार कहा जा सकता है, यदि प्रतिक्षण जीर्णता नहीं होती है, तो केवल वही अन्तिम क्षण बीतता था, जिसमे वह सर्वथा जीर्ण हो गया। यदि पदार्थ एक दूसरे पदार्थ मे बदलता है, तो वह क्षण भी बीतता होगा जहा से उसमे नवीन परिवर्तन का आरम्भ हुआ था। जीर्णता और नवीनता में एक ही क्षण की परिकल्पना यथार्थ नही है। लकडी पडी-पडी कुछ ही वर्षों मे मिट्टी मे बदल जाती है। तो क्या यह कहे कि वह एक ही क्षण मे काष्ठत्व की पर्याय को छोडकर मृन्मयता मे बदल गई है? प्रत्येक पदार्थ मे उत्पाद व व्यय (नाश) का क्रम अनवरत सहभावी चलता है और यही विरोधी युगलो का सह चक्रमण स्वीकार करता है। उत्पाद और व्यय की प्रवहमान परम्परा मे पदार्थ का ध्रुवीकरण (ध्रौव्य) सुनिश्चित है, जो पदार्थ को सत् से असत् मे बदलने नही देता।

अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम

अनुभूति और अभिव्यक्ति दो पृथक-पृथक कार्य तथा परिणाम है। अनुभूति एकाशग्राही व सर्वांश-ग्राही के रूप मे उभय पक्षी होती है। अभिव्यक्ति सदा ही एकाश का पक्ष प्रस्तुत करती है। ज्ञान के अनन्त पर्यव है और व्यक्ति अपनी निर्मल वृत्ति से यथासम्भव उन्हे अधिगृहीत करता है। अभि-व्यक्ति शब्दो के माध्यम से चलती है, अत अनुभूति की पूर्णता तथा अधिकता होने पर भी वह एक अ श को ही प्रस्तुत करने मे सक्षम होती है। यही एकाशता सापेक्षता की अनिवार्यता अनुभूत कराती

है। क्योंकि जिस अपेक्षा से विवक्षा की जाती है उसी अपेक्षा-विशेष में ही ग्रहण करते समय सत्य की उपलब्धि होती है अन्यथा सत्य के परिपार्श्व में ही भटकाव होता है। वक्ता अपनी समस्त अनुभूतियों को एक साथ व्यक्त नहीं कर सकता और जितनी वह व्यक्त करता है उतनी का सुनने वाला अधिग्रहण नहीं कर सकता। जितना भी ग्रहण होता है वह अपेक्षा के साथ संयुक्त होकर ही होता है अतः सत्य का पल्ला अपेक्षा के साथ ही सदा बंधा रहता है और यही माध्यम सशक्त होता है।

स्याद्वाद और सापेक्षवाद

भगवान् महावीर ने दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में स्याद्वाद का निरूपण किया और वर्तमान में विज्ञान के क्षेत्र में डा० अल्बर्ट आईन्स्टीन ने सापेक्षवाद के रूप में उसका विस्तार किया। स्याद्वाद का विस्तार जड़ चेतन तक ही अधिकांशतः सीमित रहा वहां डा० आईन्स्टीन ने उसके साथ आकाश व काल को योजित कर उसी सिद्धान्त का विश्लेषण आधुनिक शैली में प्रस्तुत किया। समालोचक की पैनी दृष्टि से देखने पर भान होता है महावीर का स्याद्वाद का सिद्धान्त डा० आईन्स्टीन के द्वारा विकसित होकर विज्ञान के क्षेत्र में आया है। दोनों ही सिद्धान्तों की अद्भुत समानता विस्मय-कारक है। यदि स्याद्वाद के अधिकारी आचार्य जड़-चेतन आकाश-काल के अनन्तर धर्म (गतिशीलता का माध्यम) और अधर्म (स्थितिशीलता का माध्यम) इन दोनों तत्वों को और संयुक्त कर विवेचन करते हैं तो रहस्यों के विवेचन की नवीन शृंखला तो प्रारम्भ होती ही है साथ ही स्याद्वाद के क्षेत्र में अभिनव चिन्तन की परम्परा भी प्रादुर्भूत होती है।

स्याद्वाद को संशयवाद या अर्ध सत्य के रूप में निरूपित करने का जिन विद्वानों ने साहस किया आश्चर्य है सापेक्षवाद के प्रति उनका उक्त मन्तव्य नहीं बना जबकि दोनों के निरूपण में शाब्दिक अन्तर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी मौलिक अन्तर नहीं है।

गलती क्यों हुई ?

सहज प्रश्न उभरता है बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा स्याद्वाद के विवेचन में गलती क्यों हुई ? इसके कुछ कारण हैं। स्याद्वाद शब्द का निर्माण स्याद् और वाद इन दो शब्दों की समन्विति से हुआ है। स्याद् अव्यय है और इसके कई अर्थ हैं। सम्भावना विधान प्रश्न आदि के अतिरिक्त कथंचित् अपेक्षा विशेष कोई एक दृष्टि किसी एक धर्म (स्वभाव) की विवक्षा आदि अर्थ भी होते हैं। किन्तु आश्चर्य है विद्वानों का चिन्तन केवल सम्भावनात्मक अर्थ तक ही सीमित रहा और उन्होंने इसी अर्थ के आधार पर स्याद्वाद को संशयवाद के रूप में निरूपण करने का प्रयत्न किया।

शंकराचार्य के युग में शास्त्रार्थ का दौर विशेष चलता था और एक आचार्य दूसरे आचार्य के उपहास के लिए भी प्रस्तुत रहते थे। स्याद्वाद को संशयवाद के रूप में उपहास-मात्र बनाने का कल्पित मन्त्र प्राप्त कर वे उसका प्रयोग करने से कब चूक सकते थे ?

भू० पू० राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् तथा प्रभृति महानुभाव उपहास-परम्परा से सर्वथा दूर हैं किन्तु शंकराचार्य के सम्भावनात्मक अर्थ की भूमि से वे भी दूर नहीं हट पाये और उसी विवेचन को शब्दान्तर से अपनी पुस्तकों तथा लेखों में दुहराते रहे। भारत में गहन और स्वतन्त्र अनुसंधान की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति अल्प है और पूर्व लेखकों को ही अपने विवेचन में दुहराना अधिक। यही कारण है कविवर डा० रामधारीसिंह दिनकर डा० सेठ गोविन्ददास आदि भी इसके

अपवाद नही रह सके और उन्ही भूलो को उन्होंने ज्यो का त्यो दुहराया। उन्हे उस त्रुटि का आभास तक भी नही हुआ।

डा० दिनकर तो इससे भी आगे बढ़ गये हैं। उनका कहना है—"जैन धर्म मानता है कि सत्य को पहचानने का कोई निश्चित आधार नही हैं। अतएव हमे चाहिए कि हम अपने सिद्धान्त के आस-पास सशय को मडराते रहने दें। सच्चा अहिंसक मनुष्य वह है जो बराबर यह सोचता रहता है कि सभव है, मेरा मानना गलत हो और विरोधी की मान्यता ही ठीक हो। हम सभी लोग विरोधियो को शका की दृष्टि से देखते हैं। अहिंसक व्यक्ति की विशेषता यह है कि वह अपने ऊपर भी शका करता है। इस मतवाद को जैन धर्माचार्य अनेकान्त-वाद कहते हैं[1]।" लगता है, डा० दिनकर सशय के प्रवाह मे स्वय बह गये। उन्होंने जैन धर्म व दर्शन को उसके मूल आधारो से जानने का प्रयत्न ही नहीं किया। जिस धर्म के पास सत्य को पहचानने का यदि निश्चित आधार नही है तो क्या वह धर्म हो सकता है? उसका कोई दार्शनिक आधार बन सकता है और क्या वह परम्परा सहस्राब्दियो तक जनता व विद्वानो को आकर्षित कर सकती है? एक सच्चा अहिंसक न तो स्वय को ही शका की दृष्टि से देखेगा तथा न वह विरोधियो को ही शका की दृष्टि से देखेगा। सच्चा अहिंसक वीतराग व आत्मस्थ होता है। जब तक उसका सत्य से साक्षात्कार नही होता है, पूर्ण अहिंसक भी नहीं बनता। जब यह अनिवार्यता है, तब अहिंसक के परिपार्श्व मे शका या सशय के मडराने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नही होता। अनेकान्तवादी सत्य के केन्द्र मे होता है। उसकी अनुभूति व अभिव्यक्ति सशयातीत होती है। वह जो भी निरूपण करता है, उसमे आपेक्षिक पूर्णता अवश्यम्भावी है। महावीर ने अविश्वास-परक अहिंसा का कभी भी विवेचन नही किया। कहना चाहिए, उन्होंने उसे अहिंसा माना ही नही।

डा० राधाकृष्णन् जब उपराष्ट्रपति थे, स्याद्वाद के इसी पहलू पर अणुव्रत परामर्शक मुनिश्री नगराजजी, डी० लिट्० के साथ उनकी गम्भीर चर्चाएं हुई थी। एक घण्टे के चिन्तन के बाद उन्होंने इसे स्वीकार किया कि स्याद्वाद पर अर्ध सत्य का मुखौटा लगाना उसके साथ न्याय नही है। अब भी अपेक्षा है, भारत के विद्वान् भगवान् महावीर के स्याद्वाद की गहराई मे उतरने का उपक्रम करें और प्राचीन त्रुटियो को दुहराने के चिरन्तन अभ्यास से ऊपर उठें, ताकि सत्य का अकुर किसी भी प्रकार से असत्य की धूलि से आच्छन्न न हो सके। ★★★

---

[1] गान्धी युग पुराण, स्कन्ध ५ की भूमिका मे



❀ श्री जैन मित्र मण्डल, जयपुर ❀

— संगीत-विभाग —



मण्डल के नवगठित संगीत विभाग के सदस्यों के साथ विभाग के संयोजक श्री माणकचन्द गोलेछा तथा सह-संयोजक श्री फतहसिंह दरडिया। इस वर्ष पर्वाधिराज पर्यूषण में मात्र २ दिन पूर्व ही इस विभाग का गठन किया गया था अपने अल्पकाल में ही इस विभाग ने अपने लोकप्रिय कार्यक्रमों द्वारा जन-जन का हृदय ही नहीं जीता है, बल्कि समाज में अपना प्रमुख स्थान बना लिया है।

कायोत्सर्ग और सामायिक

★ चन्दनमल नागौरी, छोटी सादड़ी (मेवाड़)

महान् तपस्वी भगवान महावीर ने तपस्या में बार बार कायोत्सर्ग ध्यान किया था। कायोत्सर्ग बाह्य व मानसिक शुद्धि कर आत्मशक्ति तथा बुद्धि का विकास करता है। किन्तु सामायिक की वर्तमान प्रचलित प्रथा में सुधार की आवश्यकता है, इस प्रथा से की गई सामायिक चाहे वह देशविरति हो या सर्वविरति यदि वह सम्यग्ज्ञान पूर्वक नहीं की गई है तो लाभदायी नहीं होगी। इन्हीं विचारों को अवगत कराने का प्रयास है—नागौरीजी की प्रस्तुत व्याख्यायुक्त रचना।

—सम्पादक

जैन धर्म क्रियाओं में कायोत्सर्ग का मुख्य स्थान है अतः इसके बिना कोई धर्म नहीं होता तदनुसार काउस्सग्ग बिना कोई क्रिया नहीं होती। इसका खास हेतु है कि हर क्रिया में मन वचन और काया व योगों की एकाग्रता मुख्य मानी गई है और धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान के लिये सब से प्रथम एकाग्र मन वाला होकर शरीर पर से ममता का त्याग करना और उत्सर्ग करने ऊंची स्थिति पर पहुंचने का प्रयत्न करना इसी का नाम कायोत्सर्ग है। काउस्सग्ग के करने में समाधी आती है और बाह्य उपसर्ग के आने पर सहनशीलता रखने का गुण प्रगट होता है, स्व विचारणा और एकचित्त एक निष्ठा से रहना साथ सकते हैं आत्म परिणति समान भाव में रखने का पाठ मिलता है, और तीनों योगों को एक सूत्र में रखने का यह एक अमूल्य साधन है इसलिये काउस्सग्ग करना अच्छी तरह से सीखना चाहिये और इसका अभ्यास करने से पहिले काउस्सग्ग में लगने वाले दोषों को पूरे तौर से जान लेना चाहिये और सब दोषों को कंठस्थ कर लेना चाहिये जिससे हर क्रिया में दोषों का बचाव हो सकेगा, और ऐसा किताबी ज्ञान होगा तो वह क्रियात्मक नहीं होने से तत्काल काम नहीं आ सकेगा इसलिये दोषों को अच्छी तरह समझ कर उन पर विचारणा करके उनसे बचते रहिये, और जब सारी क्रियायें खतम हो जाय तब यह विचार अवश्य कर लेना चाहिये कि आज की क्रिया दोष रहित हुई है कि नहीं? जब इस तरह का अभ्यास करते रहेंगे तब किसी दिन अपने आप वह मार्ग मिल जायगा जिसकी खोज में आप संलग्न हैं।

कायोत्सर्ग बाह्य व आंतरिक दोनों प्रकार की शुद्धि करता है आत्म शक्ति का विकास करता है इसके करने से जड़ता दूर होती है, निर्बुद्धि

होता है उससे वुद्धि आती है, वायु प्रकृति वढ गई हो तो उसकी विषमता से मुक्त हो जाते हैं, मद वुद्धि होता है वह भी विचारवान हो जाता है, और भावना भी इसके साधन से शुद्ध बनती है, तब ही तो भगवत परमात्मा का बयान जो कल्प सूत्र मे आता है उससे यह जानकारी होती है कि भगवान ने तपस्या मे वार वार काउसग्ग ध्यान किया था इसलिये इस क्रिया को बहुत प्रेम के साथ करना और इसके भेद भेदानुभेद गुरु से सीख लेना चाहिये, इस विषय का किंचित स्वरूप आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति गाथा १५४६ मे जान लेना चाहिये और भी सूत्रो मे, ग्रंथो मे इस विषय का खुलासा बहुत मिल सकेगा। काउसग्ग मुद्रा मे रह कर पूरे किये काउसग्ग से एकाग्रता आती है, एकाग्रता ध्यान का मुख्य अंग है, यह प्राणायाम का बीज है, वैसे ध्यान मार्ग मे प्रवेश करने के कई तरह के योग बताये हैं आत्मा पर प्रभाव हो और आत्म गुण ग्रहण करने मे सहायता मिलने हेतु-ध्यान विधान बताया है, अत इस विधान का शुद्धमान करना चाहिए।

सामायिक के तो अनेक योग बतलाये—परन्तु सब मे मुख्य योग काउसग्ग माना है, काउसग्ग करते समय दोष न लग जाय इसे जानने को दोषो का वर्णन किया है। काउसग्ग मुद्रा के प्रकार भी समझने योग्य हैं। इच्छायोग साधू व श्रावक को एक सा होना कहा है। इस विषय के भेद भेदानुभेद अवश्य जानना चाहिए।

कायोत्सर्गादि सूत्राणा, श्रद्धा भेदादि भावत ।
इच्छादियोग साफल्य देश सर्वव्रत स्पर्शाम् ॥

भावार्थ—कायोत्सर्गादि, आवश्यक सूत्र पर श्रद्धा वुद्धि आदि भाव सहित देशव्रती या सर्व-विरती वाले मुनि को इच्छादि योग की सफलता प्राप्त होती ह।

विशेष प्रकार से आवश्यक सूत्र मे जो वर्णन दिया है, उस पर श्रद्धा हो और शुद्ध भावना हो तो इस तरह के सामयिक व्रत तमाम बातो की सिद्धि के लिये अमूल्य रत्न के समान है।

सामायिक की प्रथा जो वर्तमानकाल मे प्रचलित है वह वदनीय एव आदरणीय है लेकिन बहुत सुधार मागती है वर्तमानकाल के उपासको ने ऐसे अमूल्यरत्न की कीमत करना नही सीखा, और येन केन प्रकारेण सामायिक करने की आदत ही रखी फिर वह नैगमनय द्वारा हो या व्यवहारनय द्वारा हो मुख्य ध्येय एक ही रखते है कि सामायिक हो जाय तो अच्छा है, इस तरह के उपासक जितना कार्य की तरफ लक्ष्य देते है उतना सिद्धि की तरफ नही देते, इसी कारण से सामायिक करने वाले सामायिक लेकर या तो माला फेर कर समय पूरा करते है, या पुस्तक वाच कर व्याख्यान के समय एक पथ दो काज करते हैं या धर्म चर्चा से या स्तवन सभाय के घुमाने मे, अपना पाठ याद करने मे और सब से अन्तिम घडी के मिनिट गिनते या घडी की रेती हिलाने से समय पूरा करते हैं। इस तरह की क्रिया सवर पैदा करती है और निर्जरा भी होती है लेकिन आत्मजाग्रति को स्थान नही मिलता, पडिक्कमामि, निदामि, गरिहामि अप्पाण वोसिरामि के लिये जो प्रतिज्ञा ली गई है उसे पूरी करने का अवकाश तो मिलता ही नही और आत्मा को आगे प्रगति करने का रास्ता ही नही मिलता। अत आत्म-जाग्रति के लिये जहा से उठे थे वहीं अपने आपको खडा देखते हैं।

सामायिक के सुधारणा के पाठ यथोचित नही पढाये जाते और किसी-किसी पाठशाला, वोर्डिंग अथवा गुरुकुल मे तो सामायिक का करना फर्जियात रखते है, लेकिन यह अनुष्ठान तो मर्जियात किया जाय वही ज्यादे काम देता है हा यह बात मानने

जसो है कि पर्जियात म से मंजियात होना सज बात है। लेकिन यह सब तब होना है कि तोता वाले पाठ न पढाये जाने हो और क्रियात्मक पद्धति निरय बताई जाती हो जिसमे स्वाभाविक प्रम पदा हो कर शुद्धमान क्रिया होती रहे तो आत्मजागृति की सम्भावना अवश्य हो सकेगा। जिस प्रकार आप अपनी बाल्यावस्था म सामायिक करते थे उसी तरह यदि युवावस्था व वृद्धावस्था म भी करते रहें और आत्मजागृति की तरफ दुर्लक्ष्य रखें तो समझ लीजिये कि जब क्रिया करना सीखा था काफी समय के बाद भी आप स्वय को वहा पाएँगे। इस तरह की क्रिया ही होती रहेगी तो खाली कायाक्लेश ही समझियेगा।

इस तरह की सामायिक देशविरती हो या सव विरती हो जो सम्यग्ज्ञान पूवक नही है वह सामायिक नही होगी क्रिया अनुष्ठान तो ठोस व सम्यग्ज्ञान दृष्टि स ही होना चाहिये। ज्ञानी आडम्बर इसम काम नही देता यदि आप भी इस प्रकार की गल्ती करते ही हैं तो आप को पुन उस की पुनरावत्ति नही करनी चाहिये। इस विषय म पचम अग भगवत्यासूत्र व आवश्यक सूत्र की नियु क्ति म गाथा ७९६ म उल्लेख है कि सामायिक चार प्रकार से मानी गई (१) श्रुत सामायिक (२) समकित सामायिक (३) देशविरति और (४) सव विरती। इन चारो म प्रथम जो श्रुत सामायिक है वह भव्यमिथ्यात्वी आत्मा को होती है और अभव्य आत्मा को भी द्रव्य से श्रुत का लाभ होता है जो कवल पाठरूप होती है। ऐसी सामायिक करने वाला समकित दीपक के समान होता है जिसका स्थान प्रथम गुणठाणा है दीपक दूसरे को उजियाला बताने वाला होता है लेकिन खुद के नीचे अधेरा होता है तदनुसार अभवी जीव भी जिन वचनानुसार प्ररूपणा करता है दूसरे आत्माओ को अच्छा माग बताता है धम प्राप्त कराता है और उसे किसी भी सूरत स श्रद्धा नहीं हो पाती अत प्रथम गुणठाणी होता है।

दूसरी समकित सामायिक यानि दशन सामायिक सम्यग्दृष्टि चौथे गुणठाणे वाले श्रावक को होती है। तीसरी देशविरती सामायिक वाला श्रावक पाचवे गुणठाणे और चौथी सवविरती वाला छठे व सातवें गुणठाणे मुनिमहाराज होते हैं इन चारो म श्रुत सामायिक पर ही यदि आप कदम रखे हुए हैं तो स्वय सोच लीजिये कि आप किस जगह खडे हैं।

जिन पुरुषो को ससारिक दशा का भान होता है वह अपने आप को उच्चगति म ले जाने जैसा कृत्य किया करते हैं उनके काय नैतिक नही होते, वह तो आत्महित के काम करते रहते हैं जिन मनुष्यो को नित्य प्रति हित शिक्षा मिलती रहने पर भी धम माग और सामायिक जसे रत्न स प्रेम नहीं हो पाता उनके लिये समझिये कि उनकी ससार दशा अति करुणी है। सासारिक जीवात्माओ का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि एक आत्मा एसी होती है जिसको सघन रात्रि की उपमा दी गई है जिस प्रकार मेघ की घनघोर घटा से आच्छादित अमावस्या की रात्रि म कुछ भी नहीं दिखाई पडता है उसी प्रकार आत्मा को प्रगाढ मिथ्यात्व के उदय स तीव्र मोहिनी की प्रबलता के कारण किसी भी तरह का हित अहित सत्यासत्य कृत्याकृत्य की सूझ नही हो पाती। इसलिये ऐसे जीव प्रथम गुणठाणी भवाभिनदी मिथ्यात्व-दृष्टि वाले होते हैं, इसी कारण वे सुनकर समझकर चुप बठते हैं ऐसे जीवो म क्रियारुचि व प्रेम और श्रद्धा का अभाव होता है।

दूसरी प्रकार की जीवात्मा अघन रात्रि के समान होते हैं जसे मेघ के बादल रहित रात्रि में कम दिखाई देता है, इसी तरह वह आत्मा मिथ्यात्व

की कुछ नष्टता या मदता के कारण, मोहादिक के किंचित क्षयोपशम से धर्म की ओर अग्रसर होती है, उसे धर्म के प्रति स्वाभाविक प्रेम होना है। ऐसे जीव मार्गानुसारी कहे जाते हैं।

तीसरी जीवात्मा सघन दिन के समान बतायी गई है, जिस तरह सूर्य का उदय होने पर भी बादलो से आच्छादित हो जाने से वह दिखाई नही देता है, तथापि रात्रिकाल से अधिक प्रकाश होने के कारण घटादि वस्तु रात्रि की अपेक्षा अधिक स्पष्ट दीखती है, इसी तरह से मिथ्यात्व के क्षयोपशम के कारण जीव, सम्यग्दृष्टि हो जाता है और चौथे गुणठाणे होकर अनुक्रम से बारहवें गुण ठाणे तक जाता है।

चौथी अघन दिन के समान बतायी गयी है अर्थात् बादल रहित आकाश हो, और सूर्य का पूर्ण प्रकाश हो रहा हो निर्मलता दीखती हो, ऐसी अवस्था आठ कर्म का क्षय करने वाले केवल-ज्ञानी, जो पूर्ण प्रकाशी होते हैं उन्ही को प्राप्त होती है।

इस तरह से चार प्रकार के आत्माओ मे जो पहले दरजे पर ही खड़े होंगे उन्हें वीतराग के बताये हुये मार्ग मे प्रेम कैसे हो सकता है? जहा भवाभिनदी का राज चलता हो वे जीव कैसे सुधर सकते हैं। सुधरेंगें तो वही कि जो पुदगलानदी चौथे पाचवे गुणठाणे वाले हैं, या आत्मानदी जो छट्ठे सातवें गुण ठाणे हैं, बाकी भवाभिनदी को समझ आना तो बहुत मुश्किल है, अत भव भीरू आत्माओ को आत्म साधन की तरफ लक्ष्य देना चाहिये यही प्रार्थना है।

★★★

आनन्द, आनन्द और आनन्द

आनन्द, आनन्द, आनन्द, साम की हर ध्वनि के साथ आनन्द, आनन्द, आनन्द। पथिक! आख खोल कर देखो, आनन्द का देवता तुम्हारे रक्तिम कपोलो पर अमृत का सीचन करना चाह रहा है। किन्तु चिन्ता पिशाचिनी की काली रेखा उसे पसन्द नही है, उसे धो डालो। इसका कलक तन पर ही नही, मन पर भी लगता है। उठो। आलस्य मत करो। मस्तिष्क से नई खोज करके इसके धब्बे को बिल्कुल साफ करो। जीवन भार नही, उपहार है, निष्प्राण बन कर बजन मत ढोओ। आनन्द का भण्डार तुम्हारे हाथ मे है। चाबी का प्रयोग करो। खुलने मे देर नही लगेगी। अधेरे के बादल प्रकाश की किरण बन जाएंगे। अभ्युदय और निश्रयस के सारे द्वार खुल जाएंगे। ससार की सारी निधियां पलक बिछाये आतुर हृदय से तुम्हारे स्वागत के लिये खडी रहेगी। सास की हर ध्वनि के साथ यह स्वर उठना चाहिये, आनन्द, आनन्द, आनन्द, आनन्द।

—मुनि श्री राकेशकुमार जी

एक चिन्तन

★ गनेशलाल महता

मनुष्य आज अपने स्वार्थों के जाल में फसा है वह अपनी इच्छा, प्रतिष्ठा, स्वार्थ सुख और भोग की भावनाओं में इस प्रकार घिर गया है कि अन्य कोई श्रेष्ठ कल्पना ही उसके मस्तिष्क में प्रवेश नही पा रही है। जब तक वह अपनी कामनाओं और इच्छाओं की कैद से मुक्त नही होता निज स्वार्थ रुपी कटकरण को तोड नहीं डालता, जब तक उसे शान्ति और सुख की प्राप्ति नही हो सकती।

उक्त प्रसग पर प्रस्तुत है जयपुर के श्री गनेशलालजी महता द्वारा एक विचार-चिन्तन।

—सम्पादक

सभी जीव सुख चाहते हैं और बचपन से वृद्धावस्था तक क्रमश मा पत्नी सन्तान विद्या व धन में ही हमने सुख माना लेकिन अन्त में धन भी सुख की गरज पूरी नही कर सका, और अपन स्वजन सारे प्रयत्न से ममता व आर्तध्यान हाथ लगा। इस अन्त की बात कारणों व अनेक जन्मो की ओर ध्यान न देकर परद्रव्य परपदार्थ में सुख की चाह ने भौतिक साधना की ओर आकृष्ट किया। भौतिक साधन समृद्धि के विकास के उपरान्त जीवन में विषमता जटिलता अविश्वास एवं उन्निनता बढ़ रही है। भौतिक उन्नति के उत्तप देश अमेरिका में ये विषमतायें—मानसिक अशान्ति और भी ज्यादा है। भौतिक उन्नति के विकास का पाया जब तक नतिकता के आधार पर खड़ा नही होगा तब तक इन विषमताओं का अन्त नहीं। शान्ति प्राप्ति के लिए नतिकता का आधार मूल है, और वह है प्रकृति की अणुशक्ति की अपेक्षा अपने आत्म स्वरूप (ज्ञान शक्ति प्रभुता आनन्द) को सही समझना व तदनुरूप प्रवृत्त करना। जहा आत्म स्वरूप को समझने की प्रवृति हुई कि शाश्वत शुद्ध चिदानन्द स्वरूप प्राप्त जिनेश्वरा के जीवन वाणी (तत्व) आचरण प्राप्ति एव तदनुकूल शान्ति समता वीतरागत्व शुद्ध बुद्ध मुक्त बनने की इच्छा प्रबल हो उठती है। आत्म स्वरूप के सामने ये भौतिक साधन धन कुबेर की दौलत, इन्द्र का पद भी अनित्य एव अनन्तकाल तक ससार में नचानेवाला महसूस होने लगेगा। सृष्टि यही रहेगी दृष्टि में फेर पड जायगा और यह फेर पड़ते ही आचरण दु खी के प्रति करुणा अपने से कमजोर के प्रति कोमलता अपने कषाय एव विकार दाय करने की

तीक्ष्णता एव शरीर, सम्वन्ध, सयोग, ससार, चक्रवर्ती का राज्य, धन कुवेर की दौलत, इन्द्र के पद के प्रति भी उदासीनता झलक आयेगी। ससार मे रहते हुए भी ससार आपमे नही रहेगा। जैसे फिटकरी गदे जल मे से कादव को नीचे विठा निर्मल जल को ऊपर ले आती है। साबुन जैसे मैल को साफ कर देता है वैसे ही आत्म-ज्ञान जीवन की विषमताओ के लिए एकमात्र अचूक औषध है।

सत व ज्ञानी इसीलिये कहते है कि आत्म स्वरूप को जानने श्रद्धा व तद्नुकूल आचरण विना अन्य जो कुछ भी, यहा तक कि अणु परमाणु की शक्ति, चन्द्र यात्रा, प्रेक्षापाशस्त्र व समुद्रतल की खोज एव समुद्रतल मे विचरण सव वेकार हैं कारण मानव जीवन मे सतोप, समभाव, शान्ति के विना ये शक्तिया उपलब्धियो के स्थान पर विनाशकारी भी वन जाती हैं। हिरोशिमा काण्ड आदि मे व पूर्वी वगाल मे हो रहे नृशस नर सहार एव अत्याचार इसके प्रमाण हैं।

जितनी दौड-शक्ति, समय भौतिक उपलब्धि की ओर है उसका आठवा हिस्सा भी अगर अपने आपको समझने, जानने मे व्यय हो तो महान् गुणकारी एव लाभकारी सिद्ध होगा। विदेशी गुलामी के वाद स्वराज्य मे भौतिक साधनो की दौड मे नैतिकता का अद्य पतन हो गया है इसलिये इस ओर अपने व जनता के व अन्तोगत्वा विश्व के भले के लिये शासक वर्ग को ही जीवन व शासन दोनो मे नैतिकता को पुन जीवित करना चाहिए और नैतिकता व आत्मस्वरूप की हितकर शिक्षा प्रणाली को अविभाज्य अग वना देना चाहिये तभी हर विपमता जटिलता का उपाय ज्ञान, वैराग्य से अहकार और स्वार्थ से ऊपर आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लक्ष्य मे करुणा, कोमलता, तीक्ष्णता एव उदासीनता रूप मार्ग सहज ही सव जीवो के लिये कल्याणकर हो जाए। विषमतायें या जटिलताये कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय जीवन मे कम होने से आये दिन हडताल तोडफोड विनाश की कार्यवाही के वजाये सृजन, रक्षण एव विकास का मार्ग प्रशस्त होगा और भूतकाल मे भौतिक व आध्यात्मिक समृद्धि का देश भारत फिर से विश्व को मार्ग दर्शन दे सकेगा। सच्चा व्यापार भौतिक तरक्की के साधन, टेकनोलोजी का जहा आयात होगा वहा जीवन की मूल आवश्यकता, शान्ति, समता वीतरागता, आत्मस्वरूप के ज्ञान, श्रद्धान एव आचरण (जीवन पद्धति) का मुख्यत निर्यात होकर अविश्वास का वातावरण कम होगा। रक्षा के नाम पर विनाशकारी उत्पादनो मे हो रहा व्यय, सृजनात्मक एव सुविधात्मक कार्यो पर लगकर धरती को स्वर्ग वना देगा। इस प्रकार दृष्टि के पलटते ही यही सृष्टि कल्याणकारी हो जायगी।

शासक वर्ग के व्रत और प्रयत्नशील होने तक जैन समाज को मार्ग दर्शन एव मार्ग प्रशस्त करना चाहिये। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है।

(१) जैन समाज का जो अग अपने यहा स्वय एव वच्चो के आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति करीव करीव उदासीन है उसे योजना वद्ध तरीके से नियमित एव अवाधरूप से इस ओर तुरन्त प्रयत्नशील होना चाहिये। यही कसौटी द्रव्य धार्मिक कार्यो मे भावो की अभिवृद्धि, विषय कषाय विकारो के स्थान पर शान्ति समता वीतरागता आदि हैं।

(२) समाज का वो अग जो ज्ञान को वहुत महत्व देता है—उन्हे यह न भूल जाना चाहिये कि ज्ञान की प्राप्ति स्वय व्यवहार से होती है और जव तक वे गृहस्थ हैं। सामाजिक व्यवहार ही उसका वाहरी रूप है गृहस्थ छोड मुनि हो जाय—आत्म-ज्ञान मे लीन रहे—आत्म-कल्याण के इस परम पुरुषार्थ को हमारा सहस्त्र वदन। लेकिन

दृश्य रहें तो—अपनी पंचेन्द्रियां एवं मन को पर-द्रव्य परपर्याय में शुभ महसूस करते हुये कौटुम्बिक सामाजिक व्यवहार को छोड़ शिव ज्ञान की चर्चा करें तो वास्तव में ज्ञान का उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त में सारा आ गया—इसके समझने में सारा जीवन बितायें और व्यवहार पक्ष में सामाजिक मानविक नैतिकता शुद्ध बुद्ध मुक्त की राह पर मार्गानुसारी में बन जायें तो आत्म प्रवचना कहलायगी। आचरण ज्ञान की कसौटी है। आत्मज्ञान व तदनुरूप आचरण ही ठोस नींव पर आधारित सर्वोच्च मार्ग है जो अन्ततोगत्वा स्वाधीन अखंड अक्षय स्वराज्य प्राप्ति स्वरूप प्राप्ति की क्षमता रखता है।

इस प्रकार ज्ञान व तदनुरूप वैराग्य वासित नैतिक मार्गानुसारी जीवन निश्चय ही साधक वर्ग को प्रेरणा देगा। और सद्बुद्धि देगा। अपने जीवन शासन में नैतिकता को प्रतिष्ठित करें व शिक्षा में इस व आत्मस्वरूप के ज्ञान को अविभाज्य अंग बनायें ताकि विश्व शान्ति का मार्ग प्रशस्त हो।

'सम्बोधि' के माध्यम से हम अपने आपको सम्बोधित कर श्रद्धा पूर्वक शुद्ध आचरण करें यही कामना है। ★★★



महान् शत्रु–आलस्य

'सावधान रहो सावधान रहो जीवन का एक महान शत्रु कांटों का जाल बिछाये मार्ग में खड़ा है। प्रारम्भ में वह बड़ा मधुर व्यवहार करता है किन्तु अवसर पाकर फौरन अपने जाल में फंसा लेता है व सदा के लिए अपना बन्दी बना लेता है। मित्र! वह शत्रु है 'आलस्य'। निराशा असमर्थता और दरिद्रता ये तीनों उसकी अभिन्न सहचारिणियां हैं। जिस तरह धुएं के साथ अग्नि का होना निश्चित है उसी तरह उसके साथ इन तीनों का होना भी बिल्कुल निश्चित है।

पथिक! विश्राम का प्रलोभन देकर वह तुम्हें बार बार रोकने का प्रयास करेगा। किन्तु प्रगति तुम्हारा जीवन धर्म है। यदि एक बार भी तुम उसके आकर्षक जादू में फंस गये तो सदा के लिये अपने मार्ग से भ्रष्ट हो जाओगे। रुकने वाला सदा के लिये रह जाता है। सखे! धरती सबका भार उठाती है। किन्तु उसे हजारों पुरुषार्थी और कर्मठ मनुष्यों से एक आलसी का भार अधिक मालूम होता है।

—मुनि श्री राकेशकुमारजी

दक्षिण भारत के जैन आचार्य

★ आचार्य तुलसी

बहुचर्चित पुस्तक 'अग्निपरीक्षा" के रचयिता अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी, नागपुर में गत वर्ष "अग्नि परीक्षा" को लेकर हुये उग्र आन्दोलन से पूर्व दक्षिण भारत की यात्रार्थ पधारे थे।

दक्षिण भारत मे जैन सस्कृति के अवलोकन पर आधारित आचार्यश्री का यात्रा-संस्मरण यहा पाठको के लाभार्थ प्रस्तुत है।

—सम्पादक

मैं दक्षिण भारत की यात्रा कर उत्तर मे आया हूं। मैंने वहा जैन धर्म के बारे मे जो देखा, वह अपूर्व था। जैन साहित्य और पुरातत्व दोनो की प्रचुर सामग्री दक्षिण भारत मे आज भी विद्यमान है। वहा के बुद्धिजीवी लोगो मे जैन साहित्य के प्रति प्रकृष्ट आदर का भाव है। किसी भी साहित्यकार से जैन ग्रन्थो के विषय मे आदर पूर्ण उद्गार सुने जा सकते हैं।

जैन धर्म के अवशेष यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। बाहुबली की मूर्तियो की प्रचुरता है। जिस भाग मे आज जैन नही रहे, वहा भी खेतो तथा कुओ की खुदाई मे अनेक जैन प्रतिमाए निकल आती हैं। एक व्यक्ति के खेत मे एक जैन प्रतिमा निकली थी। वह उसे बहुत महत्व दे रहा था। एक गाव के बाहर हमने देखा बाहुबली की प्रतिमा खडी है। वह किसी अन्य देव के रूप मे जनसाधारण द्वारा पूजी जा रही है।

हम लोग एक छोटी नदी के पुल से गुजर रहे थे। उसके दोनो पार्श्वों मे बडे-बडे पत्थर लगे थे। निकट से देखने पर पता चला कि वहां कुछ प्राचीन मूर्तिया हैं और उनमे कुछ जैन मूर्तिया हैं। वे काल की लम्बी अवधि मे घिसती-घिसती काफी घिस चुकी हैं। दक्षिण के पुरातत्व विभागो मे हमने ऐसी मूर्तिया देखी, जिनमें सलेखना और अनशन की पद्धति अ कित है। भगवान ऋषभ की जटाधारी प्रतिमा भी वहा देखने को मिली। जैन मदिरो और गुफाओ के परिवर्तित रूप की अनेक जनश्रुतिया हमारे सामने आई। मदुरा के पार्श्ववर्ती पहाडो मे जैन गुफाओ मे तीर्थंकरो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। अब उनमे शिवलिंग स्थापित किया जा चुका है।

साहित्य पुरातत्व के अवशेष और बचे हुए जन श्रावकों को देखने से पता चलता है कि किसी दिन यहां जैन धर्म उत्तर भारत की तुलना में अधिक प्रभावशाली रहा है। जैन आचार्यों तथा जैन मनीषियों ने भाषा, साहित्य, संस्कृति, जन-जीवन और राजनीति-इन सभी पर अपना प्रभाव डाला है। तमिल के व्याकरण शास्त्र के निर्माण में मुख्य भाग जैन धर्म का रहा है। हिन्दी जगत में जो स्थान सूर, तुलसी, कबीर और मीरा का है वही तमिल और कन्नड़ साहित्य में जैन विद्वानों का है। उनके ग्रन्थों को पढ़े बिना उन भाषाओं के आदिकाल का महत्व समझा ही नहीं जा सकता।

मैंने एक-दो भट्टारकों के ग्रन्थागार देखे। आज भी उनमें काफी ग्रन्थ हैं। उनमें से बहुत सारे अप्रकाशित भी हैं। इन सारी स्थितियों का प्रत्यक्ष अवलोकन करने पर मुझे लगा कि दक्षिण भारत के जैन आचार्यों ने धर्म का व्यापक दृष्टि से प्रसार किया। उन्होंने श्वेताम्बर दिगम्बर की दृष्टि को प्रधानता नहीं दी उनका दृष्टिकोण जैन धर्म पर ही आधृत रहा। यही कारण है कि मूलतः दक्षिणभागी जैनों में मुझे साम्प्रदायिक भेद भाव देखने को न मिला।

दूसरी बात-उन्होंने जैन तत्वों को भाषा के माध्यम से इस प्रकार सार्वजनिक बना दिया कि दक्षिण भारत के नीतिग्रन्थों व प्रचार ग्रन्थों में उनका मुख्य स्थान हो गया।

मैं दक्षिण भारत की अपनी यात्रा के दौरान यहां के पूर्ववर्ती जैन आचार्यों की शासन सेवा देखकर हर्ष-विभोर हो गया हूं। उन महान् आचार्यों मुनियों व विज्ञ श्रावकों के प्रति श्रद्धा-भाव उनकी वास्तविकता को हृदयंगम करके ही किया जा सकता है।

★★★

जौहरियों से

जवाहरात के पारखी जौहरियो ! इन कंकड़-पत्थरों को रत्न समझ कर बहुत दिन भटक लिए, पागल हो लिए। अब जरा इन जीते-जागते मानव-देहधारी हीरों की परख करो। दुःख है कि तुम जड़ कंकड़-पत्थर परखते रहे और इधर न जाने कितने अनमोल रत्न धूल मिल गए! वह धनी धनी नहीं पापी राक्षस है जो सेवा करने योग्य धन रखते हुए भी किसी को भूख से बिलबिलाता हुआ देखता रहे और कुछ भी न करे।

—उपाध्याय अमरमुनि

समन्वय का अद्भुत मार्ग

अनेकान्त

★ अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

जैन दर्शन की प्रमुख विशेषता 'अनेकान्तवाद' मे स्पष्ट रुप से निहित है। 'सत्य के अनेक रुप' को स्वीकार करने मे सम्पूर्ण जैन दर्शन बहुत ही उदार रहा है। एकाग्रहपूरण हठ सत्य नही होता। हमारे व्यावहारिक जीवन मे एक ही घटनाक्रम की सत्यता, अनेकता लिये हुए सदैव प्रस्तुत रहती है। खुले दिमाग से विचार करने के लिये यह आवश्यक भी है।

जैन समाज मे शोधपूर्ण कार्य के लिये प्रख्यात श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा प्रस्तुत विचार-बिन्दु आपके समक्ष प्रस्तुत है।

—सम्पादक

जगत मे जड और चेतन दो पदार्थ है। सारी सृष्टि का विकास इन्ही पर आधारित है। जीव का लक्षण "चैतन्य-मय" कहा गया है। जिस वस्तु मे चैतन्य नहीं, वह जड है। विचार चैतन्य के ही हो सकते है, जड़ के नही। जीव अनन्त हैं, स्वरुपत समानता होते हुए भी सस्कार, कर्म और वाह्य परिस्थिति आदि अनेक कारणो से उनके शारीरिक व मानसिक विकास मे बहुत ही अन्तर नजर आता है। एक जीव से दूसरे जीव की आकृति नही मिलती। ध्वनि, अवयव, प्रकृति, रुचि, इच्छाए आदि सभी बातो मे एक दूसरे मे कुछ न कुछ अन्तर रहता है। इसी कारण सब की पृथक सत्ता है। जैन दर्शन मानता है कि—अन्य कई दर्शनो की भाति जीव एक ही ब्रह्म के अ श नही है। न कभी किसी ईश्वर ने उसे पैदा किया, न वह ईश्वर कर्म फल ही देता है। जीव अनादि है, उसका स्वय अस्तित्व है, स्वय कर्म करता है और स्वय ही भोगता है। उत्थान और पतन की सारी जिम्मेवारी उसी की अपनी है। बधन और मुक्ति स्वकृत हैं। वह चाहे, तो समस्त बधनो को तोडकर शुद्ध बुद्ध सर्व शक्ति सम्पन्न बन कर मोक्ष व परमात्मपद को

पा सकता है। दूसरे व्यक्ति द्रव्य व भाव तो निमित्त मात्र हैं। उपादान वह स्वयं है।

अनन्त जीवों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व है तो कर्मों के आवरणों की विविधता और कमीवेशी से उनके विचारों में भी विभिन्नता रहती ही। पृथक्-पृथक् जीवों की बात जाने दीजिए एक ही मनुष्य में समय-समय कितने विचार उत्पन्न होते हैं बहुधा के तो उन विचारों में कोई सामंजस्य नहीं होता। अवस्था और परिस्थितियों आदि के बदल जाने पर उसके विचारों में गहरा परिवर्तन हो जाता है। हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि अमुक व्यक्ति के विचार आज जो कुछ हैं उसके थोड़े समय और थोड़े वर्षों पहले उससे सर्वथा विपरीत थे। आसपास के वातावरण व्यक्तियों का और घटनाओं का उस पर जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। जब एक मनुष्य की ही यह हालत है तो समस्त जीवों के विचारों में साम्य कभी हो ही नहीं सकता। विषमता में समता कैसे स्थापित की जाय? इस पर जैन तीर्थंकरों ने विशेषतः भगवान महावीर ने बहुत ही गम्भीर चिन्तन किया है। उन्होंने अपने चारों ओर देखा कि विचार विभिन्नता के कारण प्रवृत्ति विभिन्न होती है और एक दूसरे को विरोधी मान कर लोग परस्पर में झगड़ते हैं व टकराते रहते हैं। घर-घर में बाप बेटे में पति-पत्नि में भेद व विरोधी भाव हैं, भाई भाई में इन विभिन्नताओं से संघर्ष कलह, वैर-विरोध युद्ध घृणा शोषण हिंसा आदि नजर आ रहे हैं। धर्म जो शान्ति का मार्ग है उसमें भी यही हालत गुजर रहा है। व्यक्ति दूसरों के विचारों को ठीक न समझ कर उससे द्वेष करने लगता है।

भगवान महावीर ने जगत् के प्राणियों में जो हिंसा की भावना बढ़ रही थी उस रोग का उपचार अहिंसा रूपी अमृत से किया। सामाजिक व आर्थिक ऊंच नीचता को भेद-भाव और मनुष्य की संग्रह तृष्णा वृत्ति का इलाज अपरिग्रह बतलाया तो विचारों की विषमता में समन्वय करने का प्रबल और सुगम उपाय अनेकान्त ही स्याद्वाद है सन्देहवाद नहीं अनेकान्त यानि ढिलमिल नीति नहीं पर वस्तु स्वरूप के वास्तविक ज्ञान का यह सच्चा द्वार है और विचार वैषम्य में समता स्थापित करने का एक मात्र तरीका है। चूंकि हर एक वस्तु और ज्ञान के अनेक पहलू होते हैं। जब तक उसके समस्त पहलुओं पर विचार न किया जाय उसका ज्ञान भ्रान्त और अपूर्ण ही रहेगा और अपूर्णता और भ्रान्ति को पूर्णता और सत्य मानकर ही मनुष्य अपने विचारों और स्थापनाओं का आग्रही बन जाता है। मैं जो कुछ कहता हूं विचार करता हूं वही ठीक है दूसरे के विचार और सिद्धान्त मिथ्या हैं गलत हैं यही एकान्त है और जैन दर्शन में इसे सबसे बड़ा पाप-मिथ्यात्व बतलाया गया है। मिथ्यात्व का अर्थ है झूठापन वस्तु के वास्तविक ज्ञान के विपरीत बात को सत्य मानकर मताग्रही बनना।

वस्तु अनेक धर्मात्मक है। अपेक्षा भेद से एक ही वस्तु में अनेक धर्म रहे हैं उन सब की ओर लक्ष्य न देकर केवल एक ही धर्म या बात को वस्तु का पूरा स्वरूप मान लेना भी मिथ्यात्व है। एक ही मनुष्य अपने पुत्र की अपेक्षा पिता है बुआ का भतीजा है, मामा का भानजा है शिष्य का गुरु है और गुरु का शिष्य है। इस तरह के और अनेक सम्बन्ध उस एक ही व्यक्ति में भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से रहते हैं। अनेकान्त उन सारे दृष्टि भेदों और अपेक्षाओं को स्वीकार करता है एवं स्याद्वाद द्वारा प्रतिपादन करता है। पर एकान्तवादी यह आग्रह कर बैठता है कि यह तो पिता ही है पुत्र नहीं और ऐसे एक-एक को लेकर अनेक व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के आग्रह कर बैठते हैं तो उन सब में एक संघर्ष छिड़ जाता है। व एक

दूसरे के विचारो का ममझने का प्रयत्न नही करते । आखिर दूमरा व्यक्ति अपने मे भिन्न विचार रखता है और उमे सत्य मानता है तो उसका भी तो कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिए । जिम प्रकार हम अपने मन्तव्य को सही समझते हैं, उसी प्रकार हर एक व्यक्ति भी अपने मन्तव्य को मही समझता है, वास्तव मे दोनो ही एकान्तवादी है, क्योकि जिम दृष्टि से एक का मन्तव्य मही है, वह दूसरे की दृष्टि से सही नही है । अत यही कहना ठीक होगा कि अपनी-अपनी दृष्टियो से हर एक के मन्तव्य अ शत सही हें । इसी प्रकार इष्ट–अनिष्ट प्रिय-अप्रिय, सुख–दुख, सत्–असत्, नित्य–अनित्य, दैव–पुरुषार्थ आदि सभी विरोधी प्रतीत होने वाले तत्वो का भी समन्वय अनेकान्त दृष्टि से महज मे ही हो जाता है । अनेकान्त दृष्टि को अपनाने पर परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले उन नातो मे विरोध के लिए कोई स्थान न रहेगा । इसलिए समन्वय के अद्भुत मार्गरूप अनेकान्त दृष्टि को सदा सामने रखकर जीवन मे आने वाले प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, राष्ट्रीय और इसी प्रकार अन्य सभी समस्याओ का हल ढू ढना चाहिए । मेरा दृढ विश्वास है कि इसके द्वारा प्रवल विरोध भी सरलता से अविरोध मे परिणित किया जा सकता है ।

जैन दर्शन मे अन्य दर्शन एव धर्मो का किस तरह अद्भुत समन्वय किया गया है इस के दो उदाहरण देने आवश्यक समझता हूँ । जैन धर्म मे रत्नत्रय–ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना को मोक्षमार्ग वतलाया है । इसमे समस्त धर्मो व मार्गो का समन्य हो जाता हे । भक्ति मार्ग का दर्शन मे, वेदान्त आदि ज्ञान मार्ग का ज्ञान मे, और योग एव कर्म मार्ग का चारित्र मे समन्वय होता है । वास्तव मे वस्तु स्वरूप का ज्ञान ही सम्यग ज्ञान है, उमकी प्रतीति कराने वाले तीर्थकरो आचार्यों आदि महापुरुषो की श्रद्धा भक्ति है । सच्चे धर्म की श्रद्धा व आदर ही समान दर्शन है, एव हेय–पाप कार्यो का त्याग और उपदेश–धर्मानुष्ठानो का अभ्यास ही चारित्र है ।

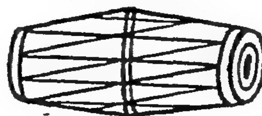
इमी प्रकार जैन दर्शन मे द्रव्य का लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रुव त्रिगुणात्मक माना है । ससार ६ द्रव्यो का समूह है । सारी प्रकृति इन द्रव्यो के गुण पर्याय पर ही आश्रित है । वैदिक दर्शन मे सृष्टि के उत्पादक, सचालक या रक्षक तथा विनाशक तीन शक्तियो को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इम प्रकार तीन देवता मान लिये गये हैं । ब्रह्मा उत्पादक हैं, विष्णु रक्षक व पौषक व महेश विध्वसक । वास्तव मे ये तीनो उत्पाद, व्यय और ध्रुव रूप त्रिपदी के रुपक से ही लगते है ।

इसीलिए योगीराज आनन्दघन जी ने अपने नमि जिन के स्तवन मे षट् दर्शनो को जैन दर्शनो का अ ग वतलाते हुए लिखा है, षट् दर्शन जिन अ ग भजीजे ।

"जिनवरमा सगला दर्शन छे, दर्शन जिन भजनारे"

सागरमा सगली तटिनी सही, तटिनी मा सागर भजनारे"

★★★



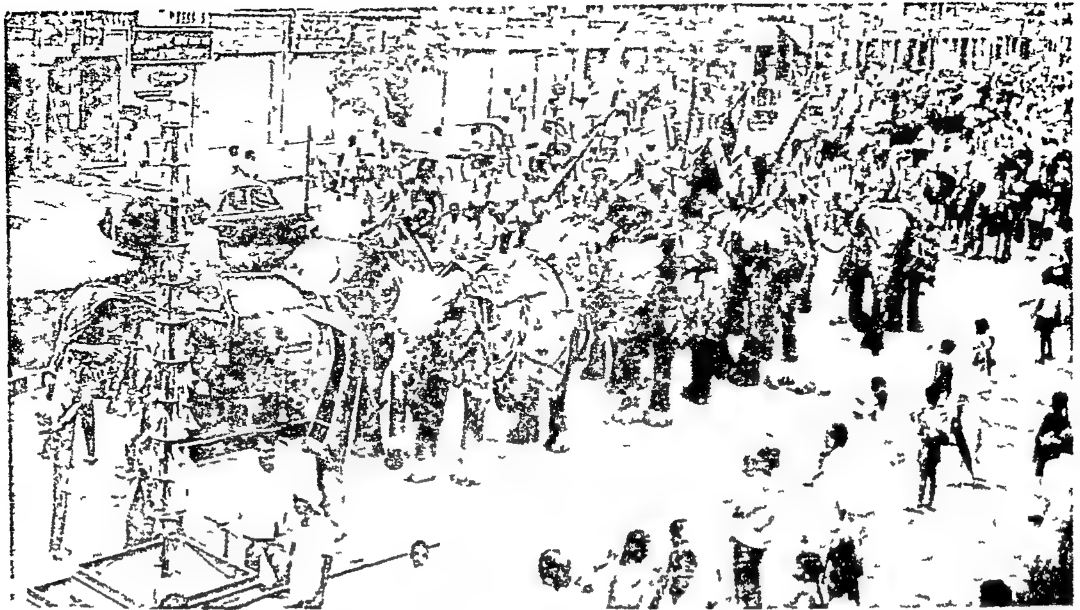
मण्डल द्वारा व्यवस्थित विशाल, ऐतिहासिक शोभा–यात्रा का एक दृश्य



विगत श्रावण मास मे सम्पन्न ७ मास क्षमण क्रमश दो दो १७ ११ तथा ६ उपवास २१ अठाईया ७ पाच उपवास तथा २५१ से भी अधिक अठ्ठम तप के तपस्वियो का एक मील से भी अधिक लम्बा विशाल सामूहिक वर घोड़ा जयपुर के इतिहास मे अभी तक सम्पन्न सभी आयोजनो से अधिक अविस्मरणीय भव्य शोभा–यात्रा के रूप मे जयपुर के प्रत्येक नागरिक के हृदय पटल पर अंकित रहेगा।

इस विशाल जुलूस की व्यवस्था इत्यादि का दायित्व जिस कुशलता एवं सफलता पूर्वक श्री जैन मित्र मण्डल के सेवा दल ने वहन किया उसकी सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की

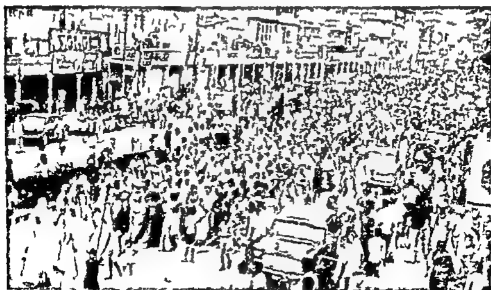
मण्डल द्वारा व्यवस्थित तपस्वियों का वरघोड़ा जुलूस की अन्य झाँकियाँ



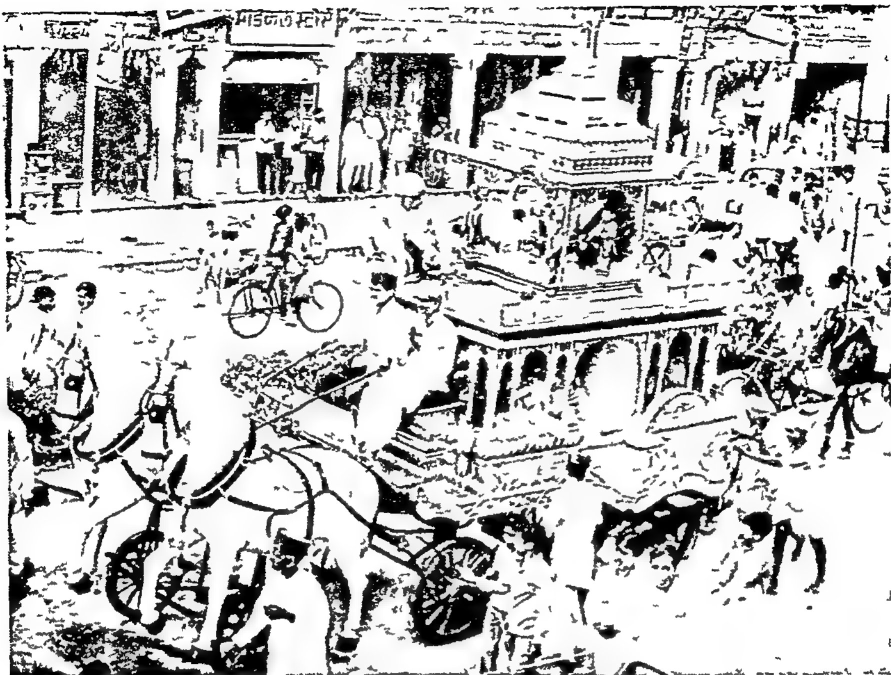
'शोभा–यात्रा' मे सवसे आगे इन्द्र ध्वजा और फिर सुसज्जित हाथी तथा ऊटो की पक्तिया शोभायमान थी। इन जुलूस मे ११ हाथी, ६ ऊट, २५ सज्जित घोडे, ७ रथ, विभिन्न सस्थाओ द्वारा प्रदर्शित कई झाकियाँ, ममाज की वहुमूल्यनिधि काष्ठ निर्मित भव्य रथ तथा अनेको सजी हुई पक्ति वद्ध कारें सम्मिलित थी।



जैन सिद्धान्तों के पट्ट लिये हुये श्री श्वे. जैन सैकण्ड्री स्कूल के छात्र, ट्रक पर लाल, हरी झण्डियों द्वारा याता-यात को व्यवस्थित करता हुआ मण्डल का एक स्वयं सेवक तथा पीछे पूज्य मुनिराजों के साथ विशाल श्रावक वर्ग



विदुषी साध्वीयों के सानिध्य में श्राविकाओं का विशाल समूह तथा व्यवस्था में सहायता करते हुये मण्डल के कार्यकर्ता तथा स्कूल के मास्टर।



जुलूस मे शामिल भव्य रथ इसमे जुते हुये काष्ट निर्मित घोडे तुरन्त दौडने को आतुर जान पडते है ।



मासक्षमण व अन्य तपश्यायो के तपस्वियो का एक सामूहिक चित्र ।

अन्धकार पर प्रकाश की विजय वेला

★ साध्वी श्री मणिप्रभा श्री

"अन्य प्राणियों में सोचने विचारने चिन्तन मनन करने के लिए ज्ञान तन्तु इतने विकसित नहीं जितने मनुष्य में। अतएव प्रत्येक व्यक्ति आत्म विकास के लिये निरन्तर प्रयास करे तो कोई कारण नहीं कि वह सूर्य से भी सहस्त्र गुणा अधिक प्रकाश पुंज आत्मदेव को प्राप्त न कर सके। क्योंकि अज्ञान से ज्ञान, शब्द से भाव, बाह्य से अन्तर, भौतिक से अध्यात्म दशारूपी प्रकाश को पाने के लिए मानव शरीर ही सर्वोत्तम है।"

कितनी सुन्दर शैली प्रयुक्त की है इस लेख की रचयिता शासन प्रभाविका पूज्य साध्वीजी श्री विचक्षण श्री जी महाराज सा० की आज्ञानुवर्तिनी शिष्या साध्वी श्री मणि प्रभा श्री जी ने।

—सम्पादक

उषा की अरुणिमा प्राची के आंचल को सुशोभित कर रही थी बाल रवि के आने का आमन्त्रण दे रही थी अन्धकार उसके आगमन पर क्रोधित हो रहा था कि अब मेरे यहां पांव टिक नहीं सकते उषा शब्दों से यह व्यक्त नहीं कर रही थी कि तुम यहां से नौ दो ग्यारह हो जावो किन्तु उसका प्रभाव ही ऐसा है कि उसकी आगमन की वेला के पूर्व ही उसके देवता कूच कर जाते हैं जब उषा के पश्चात् बाल रवि प्रगट होता है तब प्रकृति भी प्रफुल्लित होती है पक्षी भी कलरव शब्दों के द्वारा आनन्द की अभिव्यक्ति करते हैं प्रत्येक व्यक्ति नई उमंग नई चेतना लेकर कार्य क्षेत्र में प्रवेश करता है सृष्टि के समस्त पदार्थों में उल्लास दिखाई देता है अतएव हम यह अनुभव करते हैं कि प्रकाश के अभाव में अन्धकार जितने भी कलुषित व पाप पूर्ण कार्यों में प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति कराले किन्तु अन्धकार पर प्रकाश की विजय वेला अरुणिमा के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है और जहां सूर्य अपनी प्रभा से समस्त जड चेतन मय जगत को प्रकाशित करता है उस समय बिचारे अन्धकार के चरण चिन्ह भी दिखाई नहीं देते।

यही बात मनुष्य जीवन में स्पष्ट दिखाई देती है जब वह अज्ञानता मूलक प्रवृत्तियों से विमुख बन कर आत्म विकास के लिए ज्ञान का प्रकाश पाता है, उस समय उसके जीवन में एक आश्चर्य उत्पन्न करने वाली वृत्ति उत्पन्न होती है जिसके प्रभाव से उसका हृदय एकदम परिवर्तित हो जाता है और उस परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रभाव जीवन के होने वाले हर व्यवहार में परिलक्षित होता है

इसका अनुभव हमे आध्यात्मिक क्षेत्र मे होता है, क्योकि समस्त विश्व, जड व चेतन दो पदार्थो मे परिपूर्ण है, जितने भी पदार्थ दिखाई देते है, उनमे इन दोनो तत्वो का ही सम्मिश्रण है, जब तक चेतन जड पदार्थों से प्रभावित रहता है, तब तक वह अपने सद्चित् आनन्दमय आत्मस्वभाव की ओर उन्मुख नही बनता, क्योकि वह द्रव्यमान पदार्थों मे ही आनन्द की अनुभूति करता है। इसी मे सुख ढूढता है, उन पदार्थो की उपलब्धि मे ही जीवन की सार्थकता मानता है, किन्तु जब कभी उसे जीवन मे सत् की ओर अग्रसर करने वाले सत्सग का पावन प्रसग मिलता है, उसके सानिध्य से जो तत्व-ज्ञान मिलता है, मानव जब उसकी वाणी का श्रवण करता है, उस समय उसकी स्थिति विचित्र होती है। जिस प्रकार वर्षों से खोये व्यक्ति को अपने घर का मार्ग मिल जाता है, उसी प्रकार उसे एक अपूर्व आत्म ज्ञान की उपलब्धि होती है जिसकी अनुभूति से वह हर्षविभोर बन जाता है। जिस साध्य के साक्षात्कार के लिए साधनो मे खोज करता था, उस आत्म देव की उपलब्धि इसी शरीर रूपी मन्दिर मे होती है। तब वह अज्ञान मूलक प्रवृत्तियो का उन्मूलन करने मे तत्पर हो जाता है। जब तक वह भौतिक पदार्थों को बाह्य दृष्टि से देखता था, तब तक वह अन्धकार मे था, वह सत्ता, सम्पत्ति व सुख-साधनो की प्राप्ति मे ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य व चरम उद्देश्य मानता था। सद्ज्ञान रूप प्रकाश के प्रभाव मे उन समस्त प्रवृत्तियों के प्रति उसमे उपेक्षाभाव उत्पन्न हो जाता है और वह आत्म विकास मूलक प्रवृत्तियो मे विशेष रूप से प्रयत्नशील बनता है।

इस प्रकार हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अन्धकार पर प्रकाश की विजय वेला का प्रतीक मनुष्य भव मिला है। अन्य किसी भी शरीर में आत्मा, अज्ञान रूपी अन्धकार पर विजय प्राप्त नही कर सकती, क्योकि अन्य शरीरो मे सोचने समझने व चिन्तन-मनन करने के लिए ज्ञान-तन्तु इतने विकसित नही होते जितने मनुष्य शरीर मे। अतएव प्रत्येक व्यक्ति आत्मविकास के लिए निरन्तर प्रयास करे तो कोई कारण नही कि वह सूर्य से भी सहस्त्र गुणा अधिक प्रकाश पुज आत्मदेव को प्राप्त न कर सके। क्योकि अज्ञान से ज्ञान, शब्द से भाव, बाह्य से अन्तर, भौतिक से अध्यात्म दशारूपी प्रकाश को पाने के लिए मानव शरीर का यही सही एव सर्वोत्तम उपयोग है। यही हमारे जीवन मे **अन्धकार पर प्रकाश की विजय वेला** का प्रतीक है।

★★★

यो तो जन्म सभी लेते हैं।
आते जाते रहते हैं॥
विश्व-हितंकर जो कर जाते।
धन्य पुरुष वे होते हैं॥

—उपाध्याय अमरमुनि

धर्म और युवावर्ग

★ आर्य पुत्र मुनि श्री उदयसागरजी, लश्कर (ग्वालियर)

जीवन के उत्तराध म यदि धम की ज्योति प्रज्वलित हो गई तो जीवन पयन्त धार्मिकता की वास ती वायु वेगशील रहती है। आज का युवा वग दिन व दिन धम से विमुख हो रहा है उसम धम के प्रति श्रद्धा व आस्था का अभाव प्राय दृष्टिगोचर है। इसी प्रसग से सम्बन्धित पूज्य मुनि श्री उदयसागरजी महाराज सा के प्रवचन का प्रस्तुत सकलन ग्वालियर से भाई कस्तूरच द बगानी वरागी ने हम भेजा है।

—सम्पादक

समय परिवतनशील है समय के साथ–साथ पदार्थों म भी परिवतन क्रम चलता है पदाथ म भी परिवतन विद्यमान है जबकि पदाथ एक जड वस्तु है। उदाहरण स्वरूप एक तालाब म पानी है और पानी के मध्य एक पत्थर पड़ा हुआ है शन शन उस पत्थर पर काई अपना रूप धारण कर लेगा जब जड वस्तुओ म भी परिवतन प्रक्रिया विद्यमान है तो मानव म वह परिवतन स्वाभाविक ही है।

आज का ससार विज्ञान के चका चौंध के समग्र अपने नतिक कत्तव्य स विमुख हो रहा है। युवा वग तो विशेष रूप म महत्वाकाक्षी होता जा रहा है। जहा महत्वाकाक्षा स्थान बनाती है वहा स्वाथ परायणता रहती है और जहाँ स्वाथवाद रहेगा वहाँ पर अध्यात्मवाद के दशन दुलभ होंगे। और जहाँ अध्यात्म नहीं वहाँ धम नहीं विनय नहीं मानवता नहीं।

प्राचीन समय म मानव अपने जन्म के पश्चात् अवस्था म जसे–जसे बढ़ता था वसे–वसे उस अपने कत्तव्य का भान स्वत ही होता जाता था। उसके शिक्षा काल म ऐसे कड़े नियम रहते थे जिनम धम एव अध्यात्मवाद कूट–कूट कर भरा रहता था। मनुष्य के जीवन म शिक्षा का अद्वितीय स्थान है धर्मानुरागी होन के लिए विनय की नितान्त आवश्यकता है और विनय नतिक शिक्षा स ही आती है। प्राचीन आचार्यों न भी कहा है विद्या ददाति विनयम् जहाँ विनय है वहाँ ही धम है नियम हैं सदाचार है नतिकता आदि के दपण भी

सुगमता पूर्वक वहां खुले रहते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली अत्यन्त दूषित है, उसमे नैतिकता के दर्शन नही होते, उसमे सदाचार शब्द का अध्ययन तो है किन्तु क्रियात्मकता नही। शिक्षा मे नैतिकता के स्थान पर आज का विद्यार्थी उच्छ्रखलता व उद्दण्डता सीख रहा है। जिसमे उद्दण्डता होगी, धार्मिकता का समावेश उसमे असभव है। यही कारण है कि आज समाज मे, विशेषकर युवा वर्ग मे धार्मिक सस्कारो का अभाव दृष्टि गोचर हो रहा हे।

आज के समाज के ठेकेदारो की मनोवृत्ति भी युवको मे धर्म के प्रति विमुखता का मुख्य कारण है। समाज के कर्णधार सम्प्रदायवाद का बाना पहन कर, अन्ध विश्वासी एव रुढीवादी परम्परा पर चल रहे हैं। उनके पास न चिन्तन है न मनन ही। आज का युवा वर्ग, इस परिवर्तनशील युग मे दलगत साम्प्रदायिक विवादो से दूर रहना चाहता है, उसकी श्रद्धा यथार्थता मे है। भगवान महावीर की दिव्य वाणी, अनेकान्तवाद को आज समस्त विश्व अपना रहा है, तब हमारे राष्ट्र का युवक वर्ग क्यो नही अपनाता ? इस का मूल कारण रुढिवादी परम्पराएं हैं।

समाज के महन्त एव ठेकेदार सामाजिक कार्यो मे युवा वर्ग को यथोचित स्थान नही दे रहे हैं, अपने परम्परागत आसन पर महन्तो के समान आसीन रह रहे है। जबकि विश्व मे युवा क्रान्ति हो रही है। समाज के ठेकेदारो की इसी परम्परागत हठधर्मी के कारण ही जैन समाज दिन व दिन पतन की ओर जा रहा है, उसे रोकना युवा वर्ग पर निर्भर करता है। अगर सामाजिक कार्यो मे युवा पीढी को यथोचित स्थान प्रदान किया जाय तो वे अवश्य ही धर्मानुरागी बनेंगे। उनके हृदय मे श्रद्धा है, भावना है।

★★★

जीवन पथ

जीवन का पथ पकिल पथ है, सँभल-सँभल कर चलना।
क्षण-क्षण, पल-पल जागृत रहना, हो न कभी कुछ स्खलना॥

जीवन-पथ पर बिखरे काटे, दुर्गभ पर्वत नदियाँ गहरी।
क्या चिंता, नन्दन-पथ होगा, मन मे हो यदि साहस-लहरी॥

जीवन का हर पथ हो जाए, सत्य-ज्योति से जगमग-जगमग।
अ धकार से मुक्त चतुर्दिक्, हो जाए जन का अन्तर्जग॥

उपाध्याय अमरमुनि

जैन समाज की अनेकता—कारण और निवारण

★ मुनि श्री मिश्रीलालजी

'ऐतिहासिक सन्दर्भ के आलोक में हमें मालूम होता है कि जब तक आचार और विचार सम्बन्धी भेदों ने आग्रह का उग्र रूप धारण नहीं किया था तब तक जैन एकता बनी रही। किन्तु 'मेरी मान्यता ही सत्य है और दूसरों की सर्वथा असत्य है"—आग्रह की इस तीक्ष्ण तलवार ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अनाग्रह-वृत्ति का विकास ही एकता का प्रथम आधारभूत सूत्र हो सकता है। सोचने और समझने के जो दरवाजे बन्द कर दिये गये हैं वे वापस नहीं खुलेंगे तो जैन एकता की बात आकाश-कुसुम की तरह असम्भव ही रहेगी।'

प्रस्तुत है मुनि श्री मिश्रीलालजी का मौलिक एवं युगसापेक्ष चिन्तन

—सम्पादक

संघ की अविच्छिन्नता

अवसर्पिणी काल के चरम तीर्थङ्कर श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण संघ की जो सुदृढ़ एवं सुन्दर व्यवस्था की उसी का यह शुभ परिणाम है कि आज तक वह श्रमण संघ चाहे विभक्त रूप में ही हो अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। वास्तव में संघ विभेद का प्रारम्भ भगवान महावीर की विद्यमानता में ही शुरू हो गया था। गोशालक और जमालि महावीर के समय में ही अलग हो गये थे किन्तु वे जैन शासन की परम्परा में सम्मिलित नहीं किये गये। उनका जैन शासन से पृथक ही अस्तित्व बना रहा। तत्पश्चात महावीर निर्वाण के बाद लगभग ६०९ वर्ष तक शासन की परम्परा सुदृढ़ रूप में एक होकर चलती रही।

श्वेताम्बर और दिगम्बर—

उपलब्ध जैन साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भगवान महावीर ने अपने संघ में अचेल और सचेल को जिन कल्पिक और स्थविर कल्पिक के रूप में समान रूप से स्थान दिया था। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण दोनों प्रकार की साधनाएं निर्विघ्न रूप से लम्बे काल तक चलती रहीं। किन्तु यह अभेद की स्थिति महावीर निर्वाण के बाद अधिक समय तक नहीं

रह सकी। इसका सकेत हमे भगवान महावीर के दूसरे पट्टधर जम्बू स्वामी के निर्वाण के वाद मिलता है। उनके निर्वाण के वाद जिन दस वस्तुओ का विच्छेद (लोप) माना जाता है उसमे जिन कल्पिक अवस्था भी है।[1] इससे मालूम होता है कि सचेलत्व और अचेलत्व का विवाद जम्बू स्वामी के वाद ही चल पडा था। इसी प्रकार कुछ वर्षों बाद चतुर्थ पट्टधर आचार्य शय्यभव ने दशवैकालिक सूत्र मे स्पष्टीकरण किया कि–ज्ञान पुन महावीर ने सयम निर्वाहार्थ वस्त्र, पात्र आदि को परिग्रह नही कहा अपितु उन पर मूर्च्छा-भाव रखने को ही वस्तुत परिग्रह कहा है।[2] यह भी उसी द्वैध विचार धारा के विवाद को पुष्ट करने वाला था। पर लगता है फिर भी वह विचार–भेद अन्दर ही अन्दर चलता रहा और ज्यो–त्यो सघ की एकता वनी रही।

पर विभेद का वह छोटा पौधा विवाद के पानी से धीरे–धीरे वडा वृक्ष वनता गया और उसने अपने लचीलेपन को खो दिया। फलस्वरुप उसने आग्रह का रूप धारण कर लिया और आगे जाकर महावीर निर्वाण के लगभग ६०९ वर्ष वाद दिगम्वर और श्वेताम्वर इन दो परम्पराओ मे सघ विभक्त होगया।

इसके वाद सैंकडो वर्षों तक जैन सघ मुख्य तथा इन्ही दो परम्पराओ के अन्तर्गत रहा। आगे जाकर महावीर निर्वाण के ८८२ वर्ष वाद श्वेताम्वर सघ मे चैत्यवासियो की स्थापना हुई।[3] दूसरा पक्ष सविग्नया–सुविहित मार्गी कहलाया। इसके वाद तो जैन सघ विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त होता ही गया जिसका वहुत लम्वा इतिहास है। उसका वर्णन यहा आवश्यक नही, केवल उन प्रमुख धाराओ का उल्लेख मात्र ही समीचीन होगा। श्वेताम्वर सघ मे मूर्तिपूजक और अमूर्तिपूजक दो विभाग होगये। मूर्तिपूजको मे खरतरगच्छ, तपागच्छ, अ चलगच्छ, आदि कई परम्पराए है। अमूर्तिपूजको मे स्थानक वासी, और तेरापथी मुख्य हैं। दिगम्वर सघ मे वीसपथी, और तेरापथी दो प्रमुख है। तारण–तरण पथ भी अपना पृथक अस्तित्व रखता है। इसी प्रकार श्वेताम्वर और दिगम्वर परम्पराओ मे कई छोटे मोटे विभाग भी हैं, जो कि आचार–विचार की छोटी–छोटी बातो के आग्रह के कारण अपना अलग–अलग अस्तित्व वनाए हुए है।

जैन सघ मे तीर्थंकर वाणी ही सर्वोपरि है। उसे पूर्ण आत्मानुभूति पर आधारित होने का श्रेय प्राप्त है। टीकाकारो और भाष्यकारो ने उसके अर्थ को परम्परा के प्रकाश मे ही पकडने का प्रयास किया पर जहा कही सही मार्ग उसके समझ मे नही आया वहा उन्होने अपनी स्वतत्र वुद्धि से नवीन स्थापनाए भी स्थापित की। वही स्थापनाए एव अर्थभेद आगे जाकर आग्रह के रूप मे परिवर्तित होते गये। वास्तव मे यही जैन समाज की एकता को विभक्त करने का मुख्य कारण वना है।

आईये अव हम इसके निवारण के कुछ सूत्रो पर भी विचार कर लें।

---

1 गण परमोहि पुलाए आहारग-खरग-उवसमे कप्पे।
सजय-तिप केवलि-सिज्झणाय जवुम्मि वुच्छिन्ना ॥ — विशेषावश्यक भाष्य २५९३

2 न सो परिग्गाहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गाहो वुत्तो इइ वुत्त सहेसिणा ॥ — दशवैकालिक ६–२०

3 धर्म सागरजी कृत पट्टावली।

अनाग्रह—

सहस्त्रों वर्ष बाद जन धर्मानुयायियों के हृदय म यह प्रबल आकांक्षा जागी है कि विभक्त विश्रृंखल एव विखंडित जन-संघ पुनः एकता म आबद्ध हो। यह एकता के लिए शुभ चिन्ह है।

जसाकि एतिहासिक सदर्भ के आलोक म हम मालूम होता है कि जब तक आचार और विचार सम्बन्धी भेदों ने आग्रह का उग्ररूप धारण नहीं किया था तब तक जन एकता बनी रही। किन्तु मेरी मान्यता ही सत्य है और दूसरों की सवथा असत्य है —आग्रह की इस तीक्ष्ण तलवार ने उसके टुकडे टुकडे कर दिये। अनाग्रह-वृत्ति का विकास ही एकता का प्रथम आधारभूत सूत्र हो सकता है। सोचने और समझने के जो दरवाजे बन्द कर दिये गये हैं वे वापिस नहीं खुलेंगे तो जन-एकता की बात आकाश-कुसुम की तरह असम्भव ही रहेगी।

आज प्राय सभी जनों म एक दूसरे की विचार धारा को समझने का दृष्टि कोण बना है। इसी का परिणाम है कि जन एकता का विचार तीव्रता से चल रहा है और कुछ-कुछ निकटता भी बनी है। जन दशन का अनेकान्त दशन' जो अनाग्रह का शाश्वत सन्देश देता है यदि जन धर्मावलम्बियों के जीवन व्यवहार म अवतरित हो जाये तो जन एकता बहुत शीघ्र ही हो सकती है।

अनाग्रहवृत्ति का यह अथ नहीं है कि हम हमारी मान्यताओं म ही विश्वास करना छोड दें उसके लिये तो एक ही शर्त जरूरी है कि-हमने जो अपनी मान्यताओं को ही सत्य मानकर दूसरों की मान्यताओं को सवथा असत्य ठहरा दिया है उसम हम समुचित परिवतन करना होगा। दूसरों की मान्यताओं को भी शान्ति से समझने की चेष्टा करते हुए निरन्तर सत्य की खोज करते रहना ही अनाग्रह का भावाथ है। इस प्रकार अनाग्रहवृत्ति के विकास से हम जन एकता की विरासत को पुन प्राप्त करने के योग्य बन सकेंगे।

गुण-ग्राहकता—

जब अनाग्रह भावना म सभी परस्पर एक दूसरे के निकट सम्पर्क म आयेंगे तो एक दूसरे की विशेषताओं को भी नजदीक से देखने का स्वाभाविक अवसर प्राप्त होगा। उस समय यदि हम एक दूसरे के गुणों का आदर करें तो एकता एव मत्री का वातावरण बनेगा।

जन-एकता को विभक्त करने म गुण-दशन के स्थान पर केवल दोष-दशन की निदनीय वृत्ति ने बहुत बडा हाथ बटाया है। न जाने इस वृत्ति ने कितना के दिलों म घाव पदा किये हैं और कितने लोगों के दामन कीचड म पत्थर उछालने वालों की भाँति मलिन किए हैं।

गुण-ग्राहकता की भावना हम यही माग बताती है कि— दोषों को नहीं गुणों को देखो।

भगवान महावीर का पच्चीस सौ वा जन्म शताब्दी महोत्सव सन्निकट आ रहा है। इस महान अवसर के लिए और एकता को आगे बढाने के लिए प्रत्येक परम्परा के प्रत्येक सदस्य को कम से कम यह सकल्प तो अवश्य करना चाहिये कि हम किसी की चाहें प्रशसा करें या नहीं पर निन्दा तो कभी नहीं करेंगे।

हम गुण ग्राहकता के निमल सलिल से हम एकता के अकुरित पौधे को सिंचित कर वट वृक्ष में परिणत कर सकते हैं।

सह-अस्तित्व—

जैन-एकता का तीसरा महत्वपूर्ण सूत्र है—एक दूसरे के सहयोगी बनना। आज इसकी परम आवश्यकता है कि—जिन सिद्धान्तो मे सभी जैन एकमत हैं और जिनकी आज के मानव को अत्यन्त आवश्यकता है उन तथ्यो और सिद्धान्तो का हम सम्मिलित होकर प्रचार एव प्रसार करे।

जैन दर्शन के प्रति आज के वैज्ञानिक, बौद्धिक एव चिन्तनशील लोगो मे आकर्षण बढ रहा है। पिछले कुछ वर्षो मे लगभग सभी जैन परम्पराओ के प्रयास से जैन दर्शन के सम्बन्ध मे विश्व को कुछ जानकारी प्राप्त हुई है। यदि जैन धर्म के व्यापक सिद्धान्तो का सह-अस्तित्व के आधार पर और अधिक प्रसार हो तो यह जैन एकता की सिद्धि के साथ-साथ लोक-कल्याण की उपलब्धि का भी एक सुन्दर उपक्रम सिद्ध हो सकता है।

जैनो के पास साधन-बुद्धि एव कल्पना शक्ति का अभाव नही है अभाव है सह-अस्तित्व का। आज के इस प्रचार प्रधान युग मे बिना सशक्त हुए किसी सगठन का सफल होना दूर उसका जीवित रहना भी मुश्किल हो रहा है। सह अस्तित्व एव समन्वय से जैन समाज के लिए सशक्त आधार तैयार हो सकता है और वह अपनी सम्पदा से दूसरो को लाभान्वित कर सकता है। जैन-एकता का भव्य महल इन तीन सूत्रो का विकास कर खडा किया जा सकता है, जिसकी आज अत्यन्त आवश्यकता है।

★★★

कल नही, आज—

"कल नही, आज" कल नही, आज" मित्र! तुम्हारे अधरो पर यह घोष हर समय प्रतिध्वनित होना चाहिये। इसके बिना तुम्हारा चलना छलना हो जायेगा व तुम्हारे लिए सफलता देवी का दर्शन बिल्कुल दुर्लभ हो जायेगा। मित्र! चरण चरण पर इस सूत्र को दृढ सकल्प के साथ स्मृति मे लाते रहो, तुम्हारा मार्ग स्वत साफ हो जायेगा। कल का वरदान उसे ही मिलता है जो आज के वरदान को श्रद्धा के साथ स्वीकार करता है। आज की उपेक्षा करने वाले को कल का प्यार नही मिल सकता।

साथी! जो भावुक हृदय "कल नही, आज" के स्थान पर आज नही, कल का अपना लक्ष्य बनाकर चलते हैं उनका जीवन घोर अभिशापो मे पीडित हो जाता है। मिथ्या आश्वासनो के पातक से भारी बनकर उनकी मानसिक शक्ति श्लथित और कुण्ठित हो जाती है, उनका कल आगे से आगे चलता ही जाता है। वह कभी भी पूरा नही होता। कल्पना के लोक मे विचरण करने वाले वे पगु-मानव एक पाँव भी आगे नही बढ सकते।

पथिक! तुम्हारी आज तक की असफलता का कारण "आज नही, कल" का यह भ्रामक मन्त्र रहा है। विचारो और शब्दो के थोडे से भेद से तुम्हारे जीवन का सौन्दर्य एक नई चमक के साथ लहलहा उठेगा। अत तुम्हारे अधरो पर यह घोष हर समय प्रतिध्वनित होना चाहिये—"कल नही आज" कल नही, आज"।

—मुनि श्री राकेश कुमारजी

प्रेरक कहानी—

जवाहरात के दो डिब्बे

★ उपाध्याय श्रीअमरमुनि

गलती करने वाला व्यक्ति उतना दोषी नहीं होता जितना कि अपनी गलती को छिपाने वाला। सत्यवादी सदैव एवं सम्माननीय व्यक्ति के रूप में गौरवान्वित होता है। सत्य एक साधना है कठोर साधना! व्यक्ति यदि जन्म लेता है तो मरता भी है, किन्तु सत्य अजर और अमर है।

प्रस्तुत है सत्य कथन पर आधारित कविश्रीजी की एक प्रेरणापूर्ण कथा—जवाहरात के दो डिब्बे।

—सम्पादक

एक बार भगवान् महावीर का समवसरण राजगृह में था। समवसरण सभा में बड़े-बड़े आत्म त्यागी वैरागी महापुरुष भी मौजूद थे और साधारण श्रेणी की जनता भी मौजूद थी। भगवान् धर्मोपदेश कर रहे थे। उनके मुख-चन्द्र से अमृत बरस रहा था। सभी लोग तन्मय भाव से प्रभु की वाणी को हृदयंगम कर रहे थे। वहाँ एक चोर भी आ पहुँचा था। वह एक कोने में बैठा रहा और प्रभु के प्रवचन-पीयूष का पान करता रहा। यथासमय प्रवचन समाप्त हुआ तो दूसरे लोग अपने-अपने स्थान पर चले गए। लेकिन वह चोर तब भी वहीं बैठा रहा। एक सन्त ने उससे पूछा—कैसे बैठे हो अभी तक?

चोर ने कहा— मैंने आज प्रथम बार भगवान् की अमृत वाणी सुनी है। वाणी क्या अनमोल रत्नों की वर्षा हुई है।

सन्त ने कहा— सुनने के बाद कुछ ग्रहण भी किया है या नहीं? जीवन भी बनाया है या नहीं? रत्नों की वर्षा तो हुई किन्तु तुम्हारे हाथ एकाध रत्न लगा या नहीं? न लग सका तो यह रत्न वर्षा तुम्हारे क्या काम आई? एक रत्न तुम भी तो कम से कम ले लेते।

चोर सोच मे पड गया—"मै क्या लू ?" तभी उसके अन्दर का सत्य-देवता स्पष्ट रूप मे बोल उठा —'भगवन् ! प्रभु की वाणी अमृतमयी है। वह राक्षस को भी देवता बनाती है, किन्तु मैं उसे ग्रहण नही कर सकता। मैं चोर हूँ, बस चोरी करना ही मेरा धन्धा है। मेरे इस कलुष जीवन के साथ भगवान् की पवित्र वाणी का मेल कहा ? चोरी छोड दू तो परिवार क्या खाएगा ? और चोरी नही छोड सकता, तो पाया क्या ?"

वह सन्त मनोविज्ञान के बडे आचार्य थे। मनुष्य के मन को परखने की कला भी एक कला है। मैं समझता हूँ, हीरो और अन्य रत्नो को परखते-परखते कितनो का जीवन गुजर जाता है, किन्तु उन्हे मानव को परखने की कला नही आती। इन्सान को परखने की कला के अभाव ने ही ससार मे अव्यवस्था पैदा कर रखी है। जवाहरात को परखना आता है या नही, यह कोई मूल्यवान बात नही है। परन्तु मनुष्य को परखने वाला यदि एक भी आदमी परिवार मे है, तो वह सब का जीवन शानदार बना सकता है।

हा, तो वे सन्त थे, मनुष्य को परखने वाले। उन्होंने कहा—"चोरी नही छोड सकते हो, तो दूसरी कोई चीज तो छोड सकते हो ?"

चोर ने उत्साह के साथ कहा—"हा, दूसरी चीज छोड सकता हू।"

सन्त बोले—"अच्छा और कोई चीज छोडो। चोरी छोडने के लिए अभी हमारा आग्रह नही है। उसे अभी नही छोड सकते तो न सही ! किन्तु जो तुमने बहुत सच्चाई और ईमानदारी के साथ अपने जीवन का बही-खाता मेरे समक्ष खोल कर रख दिया है, मैं चाहता हू कि तुम उसी नियम को ग्रहण कर लो। देखो, सत्य बोला करो, बस सत्य, भूठ नही।"

चोर सन्त की वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि वह कहने लगा—"अच्छा मैं सत्य बोलने का नियम ले लूगा, आप दिला दीजिए।"

सन्त ने नियम दिला दिया और कहा देखो—"नियम ले रहे हो, किन्तु नियम ले लेना तो सहज है, किन्तु उसका पालन करना कठिन बात है। नियम पालन करने के लिए भी सत्य की जरूरत होती है। ग्रहण की हुई प्रतिज्ञाओं के पीछे सत्य का बल होता है, तभी वह निभती हैं। यदि सत्य न हुआ, तो कोई भी प्रतिज्ञा नहीं निभ सकती।"

चोर ने कहा—"नहीं, महाराज ! मैं सच्चे मन से प्रण कर रहा हूँ। अत प्राणों के मूल्य पर भी मैं उसका पालन करूगा।"

इस प्रकार प्रतिज्ञा लेकर चोर अपने घर चला गया। वह चला तो गया, पर प्रभु के चरणों मे बैठकर उसने जो वाणी सुनी थी, उससे उसके मन मे एक अनोखी लहर पैदा हो गई थी। घर गया तो सोचा कि अभी घर मे खाने-पीने की काफी सामग्री मौजूद है, फिर चोरी क्यो करू ? क्यो किसी को व्यर्थ ही पीडा पहुचाऊं ? जब तक रहेगा तब तक खाऊगा, जब नही रहेगा, तो फिर चोरी की बात सोचूगा।

यह सोचकर वह घर मे ही रहा, और जो पास था, खाता रहा। एक दिन जब वह समाप्त हो गया, तो विचार किया—अब कही चलना चाहिए। इधर-उधर चलने का विचार हुआ, तो मन मे एक मन्थन शुरू हो गया।

महापुरुष तो मनुष्य के अन्त करण मे प्रकाश की एक छोटी–सी किरण डाल देते हैं किंतु वह धीरे–धीरे चुप–चाप विराट् रूप ग्रहण कर लेती है। पृथ्वी पर एक छोटा–सा बीज फेंक दिया जाता है, वह धीरे–धीरे पनपता हुआ एक दिन

महान् वृक्ष बन जाता है। जीवन में भी यही गति होती है। जीवन में विचार का छोटा-सा बीज पड़ जाता है और यदि उसमें पनपने की शक्ति होती है तो वह एक दिन विशाल वृक्ष का-सा रूप धारण कर लेता है।

हाँ तो चोर के मन में मन्थन आरम्भ हुआ। वह सोचने लगा— मैं अहिंसा के देवता की वाणी सुनकर आया हूँ परन्तु चोरी करने में तो हिंसा अनिवार्य है। क्या यह संभव नहीं कि मेरा भी काम बन जाए और हिंसा भी न हो या कम से कम हो? इस तरह चोरी भी उस अहिंसा का ध्यान सुनाने लगी।

चोर ने सोचा— किसी साधारण आदमी के घर में चोरी करूंगा तो उसे कठिनाई होगी। न मालूम बेचारा कब तक रोएगा और अपने परिवार का निर्वाह करने में लाचार हो जाएगा! अब यदि चोरी करनी ही है तो ऐसी जगह करना चाहिए कि गहरा हाथ पड़ जाए तो भी घर का मालिक रोने न बैठे। तो फिर किधर यहाँ जाऊं?

—हाँ राजा है न। उनके यहाँ दिन-रात राष्ट्र के दूर-सुदूर प्रदेशों से सिमट कर धन का विशाल प्रवाह आ रहा है। अगर राजा के खजाने में से जरूरत के अनुसार कुछ ले भी लिया तो वहाँ क्या कमी पड़ने वाली है। हाथी के खाने में से चींटा यदि एक-दो दाने उठा लाए, तो हाथी का कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं और चींटी का काम भी बन जाता है। अतएव राजा के यहाँ ही चोरी करनी चाहिए।'

एक दिन वह खजाने की तरफ गया। ताला को भली-भाँति जाँच कर आया। उनकी तालियाँ बनवालीं। और एक दिन आधी रात का मठ के रूप में तालियों का गुच्छा लेकर वह चल दिया खजाने में चोरी करने।

वह पुराना युग था। उस समय के राजा प्रजा से कर वसूल करते थे सही पर बदले में प्रजा की सेवा भी करते थे। यह नहीं कि महलों में मस्त पड़े हैं और नहीं मालूम कि प्रजा पर क्या—कैसी गुजर रही है।

उस समय श्रेणिक जैसे राजा और अभयकुमार जैसे मन्त्री थे जो प्रजा में घुल-मिल गए थे। वे प्रायः वेष बदल कर रात्रि के समय घूमने चल दिया करते थे। सोचते थे—जानना चाहिए कि प्रजा को क्या पीड़ा है और कौन-सा कष्ट है? संभव है जनता की आवाज हम तक न पहुँच पाती हो। यद्यपि हमारे पास कोई भी और कभी भी आ सकता है फिर भी संभव है लोगों को आने और कहने की हिम्मत न पड़ती हो। किंतु हमें तो चाहिए कि हम प्रजा की आवाज सुन सकें। लोग रात के समय अपने-अपने घरों में खुलकर बातें करेंगे और उससे हमें उनकी ठीक-ठीक स्थिति का पता लग जाएगा।

इस प्रकार विचार कर राजा और मन्त्री गहरी रात्रि के समय अक्सर गलियों में चक्कर काटा करते थे। उस दिन भी दोनों वेष-परिवर्तन करके राजमहल से निकले। इधर से यह जा रहे थे और उधर से वह शेर बना हुआ चोर आ रहा था। अकस्मात् सामना हो गया। राजा ने पूछा— कौन?

अब सत्य-पालन का प्रश्न आ खड़ा हुआ। वह सत्य-आचरण करने का नियम लेकर आया था और पहली बार में ही उसकी अग्नि-परीक्षा का अवसर आ गया। साक्षात् राजा और मन्त्री को सामने प्रश्न करते देखकर एक बार तो चोर क्षण-भर के लिए हिचकिचाया किंतु वह तुरन्त संभल गया। उसने निश्चय किया— कुछ भी हो सत्य ही बोलना चाहिए।

इसी समय दोबारा वही 'कौन ?' प्रश्न उसके कानो से टकराया। उसने कहा—"कौन क्या, ? चोर हू !" और वह आगे चलता बना।

चोर का उत्तर सुनकर राजा और मन्त्री मुस्करा कर बगल से निकल गये। राजा ने मन्त्री से कहा—"यह तो कोई भला आदमी था। व्यर्थ ही हमने एक राह चलते भले आदमी को टोका।"

मन्त्री ने उत्तर दिया—"जी हाँ, तभी तो यह उत्तर मिला। चोर अपने मुँह से कभी अपने को चोर नही कहता, वह तो साहूकार कह कर ही अपना परिचय देता है। चोर को चोर कहने की हिम्मत कहाँ होती है ?

राजा और मन्त्री बाते करते-करते आगे बढ गए और सेठ बना हुआ चोर खजाने के दरवाजे पर पहुचा। वहा पहरा था। पहरेदार ने पूछा—कौन है ?"

चोर ने बिना हिचकिचाहट के वही उत्तर दिया—"चोर हू।"

पहरेदारो ने जब यह सुना, तो वे भी उसे राज्य-अधिकारी समझ कर अलग हट गए। चोर ने खजाने का ताला खोला। भीतर जाकर इधर-उधर देखा। राजा का खजाना था—अपार सम्पत्ति का भण्डार! उसमे चोर ने बहुमूल्य जवाहरात के चार डिब्बे देखे और उसके मन ने कहा—चलो, अब तो काफी लम्बे समय तक का काम हो गया, हो सका तो इससे कुछ धधा भी शुरु कर दू गा, और सदा के लिए यह चोरी का पाप छोड दू गा। चोर के अन्तर्मन मे एक गहरा मानसिक परिवर्तन आ चुका था, अत उसने चार मे से दो डिब्बे उठाए और बगल मे दबा लिए। खजाने का ताला बन्द करके वह तुरन्त लौट चला।

चोर वापिस जा रहा था कि सयोगवश फिर राजा और मन्त्री मे उसका सामना हो गया। राजा ने मन्त्री से कहा—"पूछे तो सही कि कौन है ?" मन्त्री बोला—पूछ कर क्या कीजिएगा ? यह सेठ है जो पहले मिला था और जिसने चोर के रूप मे अपना परिचय दिया था!"

किन्तु जब राजा के सामने आ ही गया, तो राजा के मन मे कौतूहल जगा और उसने पूछा—"कौन ?"

चोर ने कहा—"श्रीमान्, एकबार तो बतला चुका कि मैं चोर हू। अब क्या बतलाना शेष रह गया ?"

राजा—कहाँ गए थे ?

चोर—चोरी करने।

राजा—किसके यहाँ गए ?

चोर—और कहाँ जाता ? मामूली घर मे चोरी करने से कितनी भूख मिटती है ? राजा के यहाँ गया था।

राजा—क्या लाए हो ?

चोर—जवाहरात के दो डिब्बे चुरा लाया हू।

राजा ने समझा—यह भी खूब है! कैसा मजाक कर रहा है!

राजा और मन्त्री हँसते-हँसते महलो मे लौटे और चोर अपने घर।

सवेरे खजाची ने खजाना खोला, तो देखा कि जवाहरात के दो डिब्बे गायब है। खजाँची ने सोचा-कि जब चोरी हो ही गई है, तो इस अवसर से मैं भी क्यो न लाभ उठा लूँ। और यह सोचकर शेष दो डिब्बे उसने अपने घर पहूँचा दिए। फिर राजा

के पास जाकर निवेदन किया— महाराज ! खजाने में चोरी हो गई है और जवाहरात के चार डिब्बे चुरा लिए गए हैं।

राजा ने पहरेदारों को बुलाया। पूछा— चोरी कैसे हो गई ? पहरेदारों ने कहा— अन्नदाता ! रात को एक आदमी आया अवश्य था परन्तु हमारे पूछने पर उसने अपने आपको चोर बतलाया। उसके चोर बतलाने से हमने समझा कि यह चोर नहीं बल्कि आपका ही भेजा हुआ कोई अधिकारी है। चोर अगर आपका चोर थोड़े ही कह सकता है।

राजा सोचने लगा— यह तो बड़ा हैरत निकला ! वास्तव में वह चोर ही था साहूकार नहीं था। लेकिन साधारण चोर में इतनी हिम्मत नहीं हो सकती इतना बल नहीं हो सकता। जान पड़ता है—उसे सत्य का महान् बल प्राप्त है। वह किसी महापुरुष के चरणों में पहुंचा जान पड़ता है। यह चोर तो है किंतु उसकी पगडंडी बन्धन के लिए सचाई का जादू उस पर कर दिया गया है। उसने सभी कुछ सत्य ही तो कहा था।

मन्त्री ने कहा— कुछ भी हो चोर का पता तो लगाना ही चाहिए अन्यथा खजाने में एक राज मक्खियाँ भिनकने लगेंगी।

बस नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया गया— जिसने रात्रि में खजाने में से चोरी की हो वह राजा के दरबार में हाजिर हो जाए।

लोगों ने ढिंढोरा सुना तो बतियाने लगे— 'राजा कहीं पागल तो नहीं हो गया है ? कहीं इस तरह भी चोर पकड़े गए हैं ? कोई चोर राज दरबार में स्वयं आकर कैसे कहेगा कि मैंने खजाने में से चोरी की है ? वाह री राजा की बुद्धि-मत्ता ?

ढिंढोरा पीटा जाता रहा और पिटता-पिटता चोर के दरवाजे पर पहुंचा। ढिंढोरा सुनकर चोर मन ही मन सोचने लगा— मेरे सत्य की एक बार चुनौती मिल रही है ! सत्य की अजय और अमोघ शक्ति को एक बार मैं परख चुका हूं अब उससे हटने का प्रश्न भी उपस्थित नहीं होता। मैंने रात्रि में जो अपना स्पष्ट रूप रखा है वही अब भी रखूंगा और सत्य के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दूंगा।

चोर सत्य से प्रेरित होकर सिपाहियों से कहता है— चोरी मैंने की है। सिपाही उसे राजा के पास ले गए। राजा ने मन्त्री से कहा— रात वाला चोर यही है ?

राजा ने पूछा— क्या तुमने चोरी की है ?

चोर—जी हाँ यह तो मैं पहले ही बतला चुका हूं आपको।

राजा—ठीक क्या-क्या चुराया है तुमने ?

चोर—इस प्रश्न का उत्तर भी मैंने रात्रि में ही दे दिया था। मैंने खजाने में से जवाहरात के दो डिब्बे चुराए हैं।

राजा—किंतु खजाने में तो चार डिब्बे गायब हैं ?

चोर— मैं तो दो ही ले गया हूं। शेष दो के विषय में मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। मौत के मुंह पर पहुंच कर भी मैंने सत्य ही कहा है। यदि मुझे असत्य का आश्रय लेना होता तो मैं स्वेच्छा से यहाँ आता ही क्यों। दरअसल महाराज भगवान् महावीर के समवशरण में पहुंच कर मैंने धर्मोपदेश सुना। मुझसे चोरी छोड़ने के लिए कहा गया पर परिवार के निर्वाह का दूसरा कोई उपाय न होने के कारण मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब मुझसे कहा गया कि यदि तू चोरी नहीं छोड़ सकता तो सत्य तो बोला कर ! अत मैंने सत्य बोलने का प्रण कर लिया। सत्य ने ही मुझे यह दिया कि मैं आपके समक्ष उपस्थित हो सका।

कहते हैं उसकी सचाई से प्रभावित होकर राजा ने उसे कोषाध्यक्ष का पद प्रदान कर दिया। चोर का जीवन सुधर गया। ★★★

लंगड़ा विज्ञान अन्धा धर्म

★ ईश्वरलाल जैन, न्यायतीर्थ

आज का युग कहने का नही प्रत्यक्ष मे कुछ कर दिखाने का युग है। इस वैज्ञानिक और शोध-प्रधान युग मे केवल अज्ञान पूर्ण धारणाये, शास्त्रो के प्रति आस्था की नही अपितु उनके प्रति अज्ञानता की द्योतक है। नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण और अतीत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण परस्पर पूरक हैं, विरोधी नही। नए चिन्तन के प्रकाश मे पुरानी मान्यताओ एव धारणाओ की पद्धति की पुनर्व्याख्या तथा रूढवादिता को छोडकर युगानुकूल सुधार की आज धर्म, संस्कृति, समाज और जीवन सभी को आवश्यकता है। वर्तमान वैज्ञानिक युग मे केवल वही धर्म और सिद्धान्त जीवित रह सकते हैं जो मानव जीवन के लिये व्यवहारिक हो।

श्री ईश्वरलालजी जैन एक ओजस्वी एव भावना प्रधान विचारक तथा आधुनिक विचार जगत के स्वतन्त्र चिन्तक व लेखक है। प्रस्तुत है सम्वन्धित विषय पर उनका विवेचनात्मक विचार चिन्तन।

—सम्पादक

"यह विश्व क्या है? विश्व के पदार्थ क्या है?" इस जिज्ञासापूर्ति एव सत्य की खोज मे जाने वाले के लिये दो ही मार्ग है—धर्म और विज्ञान।

धर्म प्राचीन है और विज्ञान अर्वाचीन। धर्म का आधार श्रद्धा और विश्वास है एव विज्ञान का आधार तर्क और वुद्धि।

धर्म प्रवर्तको ने अपने ज्ञानवल से विश्व के पदार्थो को जिस रूप मे जैसा अनुभव किया और देखा उसका वैसा ही यथार्थ वर्णन किया, एव उन्होने उनके लिये जो कुछ भी निर्देश दिया उसे विना शङ्का किये उसी ही रूप मे मान्य रखने का दृढ आग्रह धर्म की देन है।

विज्ञान अनुसन्धान व प्रयोगो से हर वात को अपनी कसौटी पर परखता है और उसे प्रत्यक्ष मे जैसा अनुभव होता है उसका वैसा ही वर्णन करना विज्ञान का कार्य है। इस प्रकार किसी को धर्म की मान्यता पर गौरव है और कोई सभी उपलब्धिया एक मात्र विज्ञान की देन मानने की भूल कर रहा है।

हमारा भूतकाल ऐसा रहा है जब मानव का केन्द्र बिन्दु एव मात्र धर्म ही था। धर्मग्रन्थो मे कहे हुए वचनो को ही मानव यथार्थ प्रामाणिक और अटल सत्य के रूप मे मानता था। धर्म ही उसके जीवन के लिये जो मार्ग प्रशस्त करता था उसी पर बिना शङ्का किये अग्रसर होना था और उसी के लिय अपने प्राणोत्सर्ग करने को-मर मिटने को तयार रहता था। श्रद्धा और विश्वास उसकी आधार शिला थी उसकी जीवन नय्या उसी के सहारे चलती थी श्रद्धा और विश्वास के बीज बोने के लिये वह एक अच्छा और अनुकूल समय था।

आज के इस भौतिक युग मे भी हमारी अधिकाश मान्यताओ का आधार धार्मिक ग्रन्थ हैं जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक हम इन्ही धर्मग्रन्थो से अपेक्षा रखते हैं धर्मग्रन्थो द्वारा निर्दिष्ट हेय-उपादेय ग्राह्य-अग्राह्य कर्तव्य-अकर्तव्य विधि-निषेध और रीति-नीति को चुपचाप बिना सन्देह किये स्वीकार करते हैं। किसी प्रकार की जिज्ञासा अथवा प्रश्न के उपस्थित होने पर हम उस तर्क की कसौटी पर परखने की अपेक्षा अपने-अपने धर्म ग्रन्थो मे उस का समाधान उत्तर या जिज्ञासा की पूर्ति चाहते हैं। वैदिक परम्परा का अनुयायी वेद उपनिषद् पुराण और भागवत मे कृष्णभक्त गीता मे रामभक्त रामायण मे जैनधर्मानुयायी आगमो एव भगवान् महावीर की वाणी से बौद्ध धर्मावलम्बी पिटको एव बुद्ध के प्रवचनो से मुसलमान कुरान से और ईसाई बाइबल से इस प्रकार प्रत्येक धर्म अपने-अपने धर्मशास्त्रो से उसका समाधान चाहते हैं। उनका धर्मशास्त्र इस सम्बन्ध मे क्या कहता है? इस प्रकार अपने प्रवक्ताओ के वचनो का खोजने है उन मे जो कुछ भी उपलब्ध होता है उसे अन्तिम निर्णय के रूप मे स्वीकार कर लेते हैं।

परन्तु यहा अनेक धर्म हैं भिन्न-भिन्न धर्मों की अलग अलग मान्यतायें हैं उनका सामञ्जस्य भी एक समस्या है उन मे परस्पर विरोध मिलना भी सम्भव है ऐसी स्थिति मे किसे स्वीकार करना? इसके लिये अपनी विवेक बुद्धि का उपयोग करना है धर्म को भी अपनी बुद्धि की कसौटी पर परखना होगा।

जैनाचार्यों ने तो इस सम्बन्ध मे अत्यन्त उदारता पूर्वक खुले दिमाग से विचार करने की छूट दी है। उन्होने स्पष्ट कहा है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचन यस्य तस्य कार्य परिग्रह॥

अर्थात् भगवान महावीर के प्रति मुझे पक्षपात नही है और न कपिल-बौद्ध आदि दर्शनो के प्रति किसी प्रकार का द्वेषभाव है। विवेक बुद्धि से जिन का वचन युक्ति युक्त प्रतीत होता हो उनका वचन स्वीकार करना चाहिये।

'युक्तिमद् वचन यस्य' यह शब्द विशेष महत्व रखते हैं इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि धर्म को भी अपने विवेक तर्क और बुद्धि की कसौटी पर परखना चाहिये। इसी प्रकार यदि विज्ञान मे भी जो बातें युक्तियुक्त प्रतीत हो तो उसे स्वीकार करने मे भी कोई सकोच नही करना चाहिये।

धर्म और विज्ञान का मापदण्ड यद्यपि सर्वथा भिन्न है तथापि किसी भी प्रकार परखने से पदार्थ का यथार्थ स्वरूप बदल नहीं जाता उसे चाहे विज्ञान की कसौटी पर परखिये या धर्म की कसौटी पर। अटल सत्य कभी मिथ्या नहीं हो सकता यह तो परखने वाले की बुद्धि साधन और ज्ञान पर आश्रित है।

कोई समय ऐसा भी था जबकि जैन धर्म की मान्यताओ का उपहास किया जाता था जल के एक बिन्दु मे पृथ्वी मिट्टी पत्थर आदि के एक कण मे असख्यात जीव हैं वनस्पति मे भी जीवन है

वे आहार लेते हैं, सास लेते और छोडते हैं, दुख और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। शब्द आखो से अदृष्य होते हुए भी पौद्गलिक पदार्थ है। इसी प्रकार प्राचीन वार्ताओ मे आकाश मार्ग मे उडने वाले विमानो का वर्णन और तेजोलेश्या और शीतलेश्या की चर्चा उपहास का विषय बने हुए थे। जब तक वैज्ञानिको ने ऐसे विषयो पर अनुसन्धान कर प्रगति नही की तब तक ये उपहास का विषय बने रहे।

अब अपने अनुसन्धान प्रयोगो के बाद वैज्ञानिको ने इसे स्वीकार किया है कि एक जल बिन्दु मे भिन्न भिन्न आकार के हजारो जीव विद्यमान हे जिन्हे आप माइक्रोस्कोप यन्त्र द्वारा स्वय भली-भाँति देख सकते हैं।

वनस्पति के अनुसन्धान मे डा० जगदीशचन्द्र बसु ने तो अपना जीवन ही लगा दिया और उन्होने प्रमाणित करके दिखा दिया कि वनस्पति मे जीवन है वे भोजन व हवा और पानी लेकर जीवित है, वे बढते हैं, सास लेते है सास छोडते है उनमे ज्ञान है स्मरण शक्ति है, स्पर्श से उन्हे ज्ञान और दुख-सुख की अनुभूति होती है, इनमे नर और मादा भी होते हैं और कई कई वृक्ष मासाहारी भी होते हैं।

पृथ्वी आदि मे जीव होने का जैन दर्शन का सिद्धान्त आज के वैज्ञानिक यन्त्रो ने सत्य प्रमाणित कर दिया है। न्यूजर्सी (अमेरिका) के रटजर्स विश्वविद्यालय के माइक्रोबायोलाजी विज्ञान विभाग के अध्यक्ष एव नोबल पुरस्कार विजेता डा० वाक्समन ने अपनी लिखी पुस्तक "प्रिंसिपल आफ साइल माइक्रोबायोलाजी" मे एक चम्मच भर मिट्टी मे असख्य जीवो का विद्यमान होना सिद्ध किया हे।

पत्थर मे भी जीवन हे वे पृथ्वी मे रहते हुए बढते हे फलते हें। हाल ही मे भारतीय भू गर्भ सर्वेक्षण विभाग के निदेशक श्री जी० एन० दत्त ने अपने अनुसन्धान और अनुभव के बाद हिमालय के सम्बन्ध मे कहा है कि हिमालय की न केवल ऊचाई ही बढ रही है वरन् उसकी चौडाई भी बढ रही है। अनेक स्थलो पर नई 'युवा' चट्टानें पुरानी चट्टानो के ऊपर अगल बगल धकेलती हुई और बढ़ रही हैं।

जब से रेडियो, टेलीवीजन आदि का आविष्कार हुआ हे तब से जैन दर्शन के इस सिद्धान्त को अन्य दर्शन वालो को भी स्वीकार करना पडा हे कि शब्द पौद्गलिक है, आख से अदृष्य होने पर कान से टकराता है शब्द ब्रह्माण्ड मे फैलता है और विद्युत प्रक्रिया—रेडियो आदि द्वारा उसे पकडा जा सकता है।

आज के युग मे अणु बम व उद्जन बम के आविष्कार के बाद भगवान महावीर पर गोशाला द्वारा डाली गई तेजोलेश्या का वर्णन अविश्वसनीय नही रह जाता, बल्कि तेजोलेश्या के परिहार के लिये जैसे शीतलेश्या का प्रयोग किया गया था, उसी प्रकार अणुबम और उद्जनबम के परिहार के लिये शीतलेश्या जैसे पदार्थ का आविष्कार वैज्ञानिको के लिये अभी भी बाकी है।

रामायण और महाभारत आदि मे आकाश मार्ग मे विचरण करने वाले विमानो का वर्णन और अग्नि-वर्षक व शब्द भेदी बाणो की चर्चा आज के युग मे बडे बडे हवाई जहाजो के निर्माण, और तरह तरह के सहारक शस्त्रो के आविष्कार के बाद उपहास या अविश्वास के विषय नही रहे। आजकल के राकेट पूर्वकाल के अग्निवर्षक बाण और शब्द भेदी बाणो का एक सशोधित रूप भी कह सकते है।

इस प्रकार विज्ञान ने अपने आविष्कारो से धर्म शास्त्रो मे कहे गये सिद्धान्तो का प्रतिपादन एव पुष्टि करके उनका गौरव बढाया है।

आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान तर्क और बुद्धि पर आश्रित होने के कारण अपने नवीन तम साधन-प्रयोग और अनुसंधान द्वारा कसौटी पर खरा उतरने पर ही किसी बात को स्वीकार करता है किसी भी कारण से जब तक उसकी कसौटी पर खरा नहीं उतरता तब तक वह उसे स्वीकार नहीं करता। विज्ञान अपने निर्णय आविष्कार या कथन को आधुनिक साधनों से प्रत्यक्ष सिद्ध कर के बता देता है इसलिए इस विज्ञान युग में उसका कथन अधिक सत्य व अधिक विश्वसनीय माना जाने लगा है। प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर आश्रित होने के कारण मानव का विश्वास और झुकाव भी इस ओर अधिक होना स्वाभाविक बात है।

हमें यह मानना होगा कि गत सौ वर्षों के अनुसंधान में विज्ञान ने अनेक ऐसे आश्चर्यजनक आविष्कार कर के दिखाये हैं जो असम्भव से प्रतीत होने थे विज्ञान ने जल थल और अन्तरिक्ष पर अपना प्रभुत्व प्राप्त कर संसार को अपनी उपलब्धियों से आश्चर्यचकित कर दिया है। वैज्ञानिकों ने विश्व को अनेक उपलब्धियां ऐसी प्रदान की हैं जिनकी चकाचौंध में आज का मानव प्राचीन ग्रन्थों की बातों को निष्ठापूर्वक पूर्णरूप से सही मानने में संकोच करने लगा है। एक बार इस युग का मानव चन्द्रलोक की धरा पर उतर कर वहां विचरण करके वहां का प्रत्यक्ष अनुभव बता रहा हो वहां के कंकड़-पत्थर साथ लाकर वहां की उपलब्धियां बता रहा हो ऐसी प्रत्यक्ष सिद्ध बात पर हम विश्वास न करें उसे झुठलाने का प्रयत्न करें तो यह हमारे लिये उपहासास्पद होगा।

विज्ञान स्वयं अपने में पूर्ण नहीं। वह अपनी क्षमता व खोज की सीमा को जानता है विज्ञान अपनी पूर्णता का दावा भी नहीं करता उसकी उपलब्धियां अनुसंधान और आविष्कार समाप्त और अन्तिम नहीं हो गये वह तो अनुसंधान के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है।

चन्द्रलोक में पहुंचने की सफलता के बाद वैज्ञानिकों ने मंगल और शुक्र ग्रह की ओर भी अनुसंधान प्रारम्भ कर दिये हैं। हाल ही में अमरिका का मानव रहित अन्तरिक्ष यान मेरिनर ६ चालीस करोड़ किलोमीटर की लम्बी यात्रा ५॥ महीने में सम्पन्न करने के बाद मंगल की कक्षा में चक्कर काटने लगा है और वहां की सतह के चित्र भेजने भी प्रारम्भ कर चुका है उधर रूस के भी दो यान मार्स २ और मार्स ३ मंगलग्रह पर उतरने के लिये वहां पहुंच चुके हैं। और अब अन्तिम समाचार यह है कि वह यान गिरा करके वे उतर भी गया है। वहां की विशेष जानकारी और अनुभव भविष्य ही बतायेगा।

विज्ञान ने पिछले समय में जिन जिन वस्तुओं का आविष्कार किया था चाहे वह रेल हो या हवाई जहाज रेडियो हो या सिनेमा। आज के समय में उनका संशोधित और परिवर्तित रूप ही देखने को मिलेगा। उनमें भूतकाल की अपेक्षा पर्याप्त प्रगति हुई है और अब भी नित्य नये सुधार और आविष्कार हो रहे हैं। अगली शताब्दी तक क्या इन में और अधिक प्रगति होकर सामने नहीं आयगी? निश्चित रूप से उनका सुधार होगा एवं वे अधिक आकर्षक व सुख सुविधा सम्पन्न अनुभव में आयेंगे। भौतिक पदार्थों और बाह्य जीवन को विकसित करने का प्रकृति की अथवा पुद्गल पदार्थों की छुपी हुई अज्ञात शक्तियों को खोज निकालने और उन उपलब्धियों के अनुसंधान व प्रयोग से मानव समाज को सुख-सुविधाओं में इच्छानुसार उपयोग करने का श्रेय विज्ञान को है। वैज्ञानिक मस्तिष्क ने भौतिक एवं सांसारिक सुविधा और दिलबहलाव के अनेक साधन जुटा दिये हैं, वैज्ञानिक शोध से दिन प्रतिदिन भौतिक साधनों

की नवीन से नवीन आश्चर्यजनक उपलब्धिया प्राप्त हो रही है, परन्तु सब कुछ होते हुए भी मानव को वास्तविक सुख शांति की अनुभूति नही हो रही, जैसे अपार धन सम्पत्ति और ऐश्वर्य का धनी अपने को कगाल समझता है वैसी दशा आज के युग की है, सर्व सुख सुविधा सम्पन्न उपलब्धियो पर भी आज का मानव असन्तुष्ट व दु खी है, उस का मूल कारण विज्ञान की उपलब्धियो का केवल भौतिक पदार्थ व बाह्य जीवन को उन्नत करना है। इस प्रकार विज्ञान का विकास मर्यादित होकर रह गया है, अन्तरग जीवन व आत्मसुख एव अध्यात्म के लिये उसकी कोई उपलब्धि नही। उधर धर्म के लिये भी हमे यह मानना पडेगा कि धर्म अनुसन्धान व प्रयोग के साधनो के अभाव से भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध मे "क्यो और कैसे ?" प्रश्न वाचक चिन्हो का उत्तर देने मे गू गा बनकर रह गया है।

वर्तमान समय मे तेजी से परिवर्तन हो रहा है, विचार धारा बदलती जा रही है, आज का युग 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' स्वीकार करने के लिये तैय्यार नही। प्राचीन होने के कारण उसके द्वारा उपलब्ध वर्णन ही यथार्थ अथवा एक मात्र अटल सत्य है ऐसा सिद्धान्त बना लेने से हम सत्य को पा सकने मे सफल नही हो सकते। इसलिये प्राचीनता का मोह भी छोडने की आवश्यकता है।

श्री सिद्धसेन दिवाकरजी के निम्न दो श्लोक इस आशय को और भी अधिक स्पष्ट कर देते है कथन है—

पुरातनैर्या नियता व्यवस्थिति-
स्तथैव सा परिचिन्त्य सेत्स्यति।
तथेति वक्तु मृतरूढ गौरवा-
दह न जात प्रथयन्तु विद्विष ॥

अर्थात् प्राचीन पुरुषो ने जो व्यवस्था नियत की है क्या विचार की कसौटी पर वह वैसी ही खरी उतरती है ? यदि ठीक सिद्ध होती है तो हम उसे स्वीकार कर सकते हैं अन्यथा केवल प्राचीनता के नाम पर स्वीकार्य नही। यदि वह ठीक सिद्ध नही होती तो केवल मरे हुए पुरुषो के झूठे गौरव के कारण 'हा मे हा' मिलाने के लिये मैं पैदा नही हुआ। मेरी इस विचारधारा के कारण यदि मेरा विरोध करने वाले बढते हैं तो मुझे उनकी चिन्ता नही।

बहु प्रकारा स्थितय परस्पर
विरोधयुक्ता कथमाशु निश्चय।
विशेष सिद्धावियमेव नेति वा
पुरातन-प्रेम जडस्य युज्यते ॥

अर्थात् प्राचीन परम्पराये विविध प्रकार की हैं। उन मे परस्पर विरोध भी है इस लिये एकाएक कैसे निर्णय किया जा सकता है ? यदि किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिये यह कहा जाय कि 'यही पुरानी व्यवस्था ठीक है-और दूसरी ठीक नही' ऐसी बात केवल पुरातन-प्रेम के विमोह मे जड ही कह सकता है।

इसलिये जीवन मे धर्म और विज्ञान दोनो की अपने अपने स्थान पर अनिवार्य आवश्यकता है। विज्ञान और धर्म एक दूसरे के न तो विरोधी हैं और न ही बाधक। दोनो एक दूसरे के पूरक है अथवा एक दूसरे के सहायक हैं। विज्ञान के लिये धर्म को और धर्म के लिये विज्ञान को छोडने की आवश्यकता नही। सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् आइन स्टाइन (EINSTEIN) ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों मे समीक्षा करते हुए कहा है—

"Science without religion is lame and religion without science is blind"

अर्थात् धर्म के बिना विज्ञान लगडा है और विज्ञान के अभाव मे धर्म बिल्कुल अन्धा है।

दोनो के परस्पर पूरक होने मे ही जीवन के विकास मे दोनो का महत्वपूर्ण योगदान है, दोनो की ही जीवन के उत्कर्ष के लिये महती आवश्यकता है। जीवन के अन्तरग और बाह्य उभय पक्ष को उन्नत व सफल करने के लिये धर्म और विज्ञान मे से किसी को छोडा नही जा सकता। ★★

विज्ञापन